हे ज्ञानदीप आगम प्रणाम

-: लेखक :-

डॉ. रमेशचन्द जैन (एम.ए.पी.एच.डी.)

बिजनौर

प्रेरक प्रसंग : प. पू. आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के परमशिष्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज, क्षु. श्री गम्भीर सागरजी, श्री धैर्य सागरजी महाराज के ऐतिहासिक १९९४ के श्री सोनी जी की नसियाँ, अजमेर के चातुर्मास के उपलक्ष्य में प्रकाशित।

ट्रस्ट संस्थापक : स्व. पं. जुगल किशोर मुख्तार

ग्रन्थमाला सम्पादक डॉ. दरबारी लाल कोठिया न्यायाचार्य, बीना
एवं नियामक : (मध्य प्रदेश)

संस्करण : द्वितीय

प्रति : 2000

मूल्य : स्वाध्याय
(नोट :- डाक खर्च भेजकर प्रति निशुल्क प्राप्ति स्थान से मंगा सकते है।

प्राप्ति स्थान :

* **सोनी मंन्दिर ट्रस्ट**
  सोनीजी की नसियाँ, अजमेर (राज.)

* **डा. शीतलचन्द जैन**
  मंत्री – श्री वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट
  १३१४ अजायब घर का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर

* **श्री दिगम्बर जैन मन्दिर अतिशय क्षेत्र**
  मन्दिर संघी जी, सांगानेर जयपुर (राज.)

मुद्रण व लेज़र टाइप सैटिंग : निओ ब्लॉक एण्ड प्रिन्ट्स, अजमेर
✆ **22291**

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

हे ज्ञानदीप आगम ! प्रणाम

(पूज्य श्री १०८ आचार्य ज्ञानसागर : व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर आधारित)

आशीर्वाद

पूज्य मुनि श्री १०८ सुधासागर जी महाराज

पूज्य क्षुल्लक श्री १०५ गम्भीर सागर जी महाराज

पूज्य क्षुल्लक श्री १०५ धैर्यसागर जी महाराज

लेखक

डॉ. रमेशचन्द जैन, एम. ए. पी. एच. डी.,

डी लिट्., जैनदर्शनाचार्य

अध्यक्ष

संस्कृत विभाग

वर्द्धमान कॉलेज, बिजनौर, (उ. प्र.)

प्रकाशक

प्रथमावृत्ति २000 १९९४ ई.

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

विषयानुक्रमणिका

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

णमो आयरियाणं

आचार्य ज्ञानसागर : व्यक्तित्व और कर्तृव्य

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र शशाङ्ककान्तान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरु प्रतिमोऽपि बुद्ध्या ।
कल्पान्तकालपवनोद्धत नक्रचक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥

भक्तामर स्त्रोण - ४

हे गुणों के सागर ! तुम्हारे चन्द्रमा के समान उज्जवल गुणों को कहने के लिए बुद्धि के द्वारा देवताओं के गुरू बृहस्पति के समान भी कौन समर्थ हो सकता है ? प्रलयकाल की वायु से उद्धत मगरों से पूर्ण समुद्र को भुजाओं से तैरने में कौन व्यक्ति समर्थ है, अर्थात् कोई नहीं ।

जन्म - राजस्थान के सीकर जिले के अन्तर्गत राणोली ग्राम में खण्डेलवाल जैन कुलावतंस छावड़ा गोत्री सेठ सुखदेव जी रहते थे । उनके पुत्र का श्री चतुर्भुज एवं पुत्रवधु का नाम घृतवरी देवी था । उनके पाँच पुत्र थे - छगनलाल, भूरामल, गंगाप्रसाद, गौरीलाल और देवीदत्त । द्वितीय पुत्र भूरामल का जन्म, १९४८ विक्रम संवत् में हुआ था । सर्वाङ्ग गौरवर्ण होने के कारण 'भूरामल' यह नाम रखा । गाँव में खेलते, कूदते, प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करते हुए कुछ ही वर्ष बीते थे कि बालक भूरामल के ऊपर आपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। पिता चतुर्भुज जी का विक्रम संवत् १९५९ में स्वर्गवास हो गया । उस समय सबसे बड़े भाई की उम्र १२ वर्ष की थी और सबसे छोटे भाई का जन्म तो पिता जी की मृत्यु के बाद हुआ ।

पिता की असमय मृत्यु हो जाने के कारण घर की आर्थिक स्थिति का सन्तुलन बिगड़ गया । बड़े भाई छगनलाल ने हिम्मत नहीं हारी । वे गया जाकर एक दूकानदार के यहाँ नौकरी करने लगे । राणोली में प्रारम्भिक शिक्षा के बाद चूँकि शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी, अतः बालक भूरामल भी गया चले गए और किसी सेठ की दुकान पर काम सीखने लगे । किन्तु

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

होनहार तो दूसरी ही थी । गया में एक धार्मिक आयोजन हुआ । उस आयोजन में भाग लेने हेतु पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी जी द्वारा स्थापित स्याद्वाद महाविद्यालय के छात्र भी गए । छात्रों को देखकर बालक भूरामल के मन में भी ज्ञान प्राप्ति की तीव्र उत्कण्ठा जाग्रत हुई । उन्होंने अपने भाई से निवेदन किया कि मैं भी बनारस पढूँगा । भाई छगनलाल जी चाहते तो थे कि भूरामल पढ़े, किन्तु वे घर की आर्थिक परिस्थितिवश विवश थे । उन्होंने भूरामल को बनारस जाने की अनुमति नहीं दी । भूरामल तो ज्ञान प्राप्ति का दृढ़ सङ्कल्प लिए हुए थे, उन्होने बनारस जाने का अत्यधिक आग्रह किया । फलस्वरूप भाई छगललाल ने उन्हें विद्याध्ययन हेतु शिक्षाकेन्द्र बनारस भेज दिया ।

शिक्षा - बनारस आकर भूरामल जी ने स्याद्वाद महाविद्यालय में प्रवेश ले लिया । उस समय वहाँ पं. वंशीधर जी, पं. गोविन्दराय जी और पं. तुलसीराम जी आदि छात्र अध्ययन कर रहे थे । पं. वंशीधर जी अध्ययन के बाद जैनधर्म और सिद्धान्त के अच्छे ज्ञाता हुए । पं. गोविन्दराय जी संस्कृत काव्य के बहुत अच्छे ज्ञाता थे । उन्होंने संस्कृत में अनेक रचनायें की, उनका कुरलकाव्य का संस्कृत पद्यानुवाद और हिन्दी गद्यानुवाद किया, जो बहुत प्रचलित हुआ। विद्यालय में अन्य छात्रों के मुकाबले भूरामल की शैली निराली थी, अन्य छात्र जहाँ परीक्षा पास करने को महत्त्व देते थे, वहाँ भूरामल शिक्षा का उद्देश्य मात्र उपाधि प्राप्त कर लेना न मानकर ज्ञान प्राप्ति को ही सच्चा लक्ष्य मानते थे । जो शिक्षा मनुष्य को सङ्कीर्ण और स्वार्थी बना देती है, उसका मूल्य उनकी दृष्टि में कुछ नहीं था । वे मानते थे कि मानव का सच्चा जीवन साथी विद्या ही है, जिसके कारण वह विद्वान, कहलाता है । शिक्षा की जड़े भले ही कड़वी हों, किन्तु फल मीठे होते हैं, इन्हीं विचारों का अवलम्बन लेकर उन्होंने शास्त्री परीक्षा तक के ग्रन्थ हृदयङ्गम कर लिए । पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री ने एक बार कहा था कि भूरामल जी सांयकाल गङ्गा के घाटों पर गमछे बेचकर उससे प्राप्त द्रव्य से अपना भोजन -खर्च विद्यालय में जमा कराते थे और शेष से अपना अन्य खर्च चलाते थे, विद्यालय के ७० वर्ष के इतिहास में ऐसी दूसरी मिसाल देखने या सुनने को नहीं मिली[१]। कठिन श्रम द्वारा स्वाभिमानता की सम्यक् सुरक्षा और ज्ञान प्राप्ति की यह घटना

१. जयोदय पूर्वार्द्ध - पं. हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री द्वारा लिखित "ग्रन्थ कर्त्ता का परिचय" पृ. १०

उन हजारों, लाखों छात्रों के लिए प्रेरणा स्रोत है, जो आर्थिक अभाव के कारण अपने को पढ़ने लिखने में असमर्थ पाते हैं । यथार्थ में शिक्षा और स्वाधीनता का बहुत बड़ा सम्बन्ध है ।

साम्प्रदायिकता का सामना - स्याद्वाद महाविद्यालय में जब भूरामल जी अध्ययन करते थे तो उन्होंने देखा कि संस्कृत शिक्षा के रूप में मात्र ब्राह्मण परम्परा के ग्रन्थों का ही अध्ययन कराया जाता था । जैन आचार्यों ने यद्यपि न्याय, व्याकरण, साहित्य, दर्शन, छन्द, ज्योतिष, राजनीति इत्यादि विविध विषयों पर ग्रन्थ स्रजन किया है, किन्तु अजैन विद्वान् उन्हें पाठ्यक्रम में नहीं रखते थे और उन्हें पढ़ाने से कतराते थे । छात्र भूरामल जैनग्रन्थों को पढ़ने के लिए अति उत्सुक थे, अतः येन केन प्रकारेण विद्वानों के सहयोग से उन्होंने जैनग्रन्थों का अध्ययन किया । इस प्रकार वे जैन और अजैन संस्कृत ग्रन्थों के पारगामी विद्वान् हो गए । उन्होंने बड़े प्रयत्न से कलकत्ता परीक्षालय में कुछ जैनग्रन्थों को पाठ्यक्रम में स्थान दिलाया । जैन ग्रन्थों के पठन पाठन में पण्डित उमरावसिंह जी (जो बाद में ब्र. ज्ञानानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए) ने बहुत योग दिया । जयोदय महाकाव्य में भूरामल जी ने ब्र. ज्ञानानन्द को अपने विद्यागुरू के रूप में स्मरण किया है -

मिनमामि तु सन्मतिकमकामं द्यामितकैर्महितं जगति तमाम् ।
गुणिनं ज्ञानानन्दमुदासं रूचां सुचारूं पूर्तिकरं कौ ॥
जयोदय २८/९९

अर्थात् जो सन्मति - समीचीन मति सहित हैं, अकाम - काम से रहित हैं, देवों के द्वारा जगत् में अत्यन्त पूजित हैं, गुणवान् हैं, उदास - संसार से विरक्त हैं, मनोहर हैं और पृथिवी में इच्छाओं की पूर्ति करने वाले हैं, उन ज्ञानानन्द नामक विद्यागुरू को नमस्कार करता हूँ ।

यहाँ प्रत्येक चरण के आदि अक्षर से विद्यागुरू शब्द प्रकट किया गया है।

राणोली पुनरागमन - विद्याध्ययन पूर्ण कर भूरामल जी अपने गाँव राणोली वापिस आए । वे चाहते तो विद्या को आजीविका का साधन बना सकते थे और अपना जीवन भौतिक सुख सुविधाओं से पूर्ण बना सकते थे; क्योंकि 'न विद्यते विद्यायामगम्यं रम्य वस्तुषु' अर्थात् विद्या के होने पर सुन्दर वस्तुओं

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

में से ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जो नहीं मिल सके, किन्तु भूरामल जी ने विद्या को वित्त का साधन नहीं बनाया, वे ग्राम के बालकों को निःशुल्क धार्मिक अध्ययन कराते रहे और अर्थोपार्जन हेतु अपनी स्वतन्त्र दूकानदारी करते रहे । उनके बड़े भाई भी राणोली आ गए । दोनों मिलकर सारी गृहस्थी का पोषण करने लगे । इसी बीच भूरामल जी के विवाह के अनेक प्रस्ताव आए, किन्तु दृढ़मना भूरामल जी ने विवाह बन्धन में रहना स्वीकार नहीं किया, क्योंकि विद्याध्ययन के समय ही ब्रह्मचर्य पूर्वक जीवन बिताने का सङ्कल्प कर चुके थे । वे जितेन्द्रिय बनना चाहते थे । जितेन्द्रिय आत्मज्ञानी के लिए मोक्ष दूर नहीं है ।

जो अल्पशक्ति पुरूष हैं, शीलरहित हैं, दीन हैं और इन्द्रियों से जीते गए हैं, वे इस ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने में स्वप्न में भी समर्थ नहीं हो सकते । बड़ी शक्ति के धारक पुरुष ही ऐसे कठिन व्रत का आचरण करने में समर्थ होते हैं ।

साहित्य सृजन - भूरामल जी जब स्याद्वाद महाविद्यालय में अध्ययन कर रहे थे, तभी आपके जीवन में एक घटना घटी । आपने किसी अजैन विद्वान् से जैन साहित्य पढ़ाने हेतु कहा । उसने उत्तर दिया - ''जैनियों के यहाँ ऐसा उच्चकोटि का साहित्य कहाँ है, जो मैं तुम्हें पढ़ाऊँ । विद्वानों के ये शब्द भूरामल जी के हृदय में तीर की तरह चुभ गए । उन्होंने तभी दृढ़ सङ्कल्प किया कि भविष्य में ऐसा साहित्य सृजन करूँगा, जिसे पढ़कर विद्वान् भी हतप्रभ हुए बिना न रहेंगे । जिस प्रकार पूज्य वर्णीजी के हृदय में किसी के ये शब्द काँटों की तरह चुभे थे कि लोग खाने, पीने के लिए जैनी बन जाते हैं, तुमने धर्म ग्रहण किया, लेकिन धर्म का मर्म नहीं समझा। इन शब्दों ने चुनौती का काम किया था और वर्णीजी ने धर्म के मर्म को आत्मसात् किया था, जिस प्रकार विदेशियों से तिरस्कार प्राप्त कर गांधी जी की आत्मा जागृत हुई थी और उन्होंने भारत को स्वतन्त्र कराकर ही चैन लिया था, ठीक यही स्थिति भूरामल की हुई, वे घर, दूकान, गृहस्थी सब कुछ भुलाकर उच्चकोटि के साहित्य सृजन में लग गए और उन्होंने वे रचनायें साहित्य जगत् को दी, जिन पर कोई भी समाज गर्व कर सकता है । ये रचनायें वर्तमान युग की अमूल्य निधि हैं । उन्होंने संस्कृत और हिन्दी उभय भाषा में साहित्य प्रणयन किया, जो इस प्रकार है -

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

संस्कृत रचनायें - (१) - दयोदय (२) भद्रोदय (३ सुदर्शनोदय (४) वीरोदय (५) जयोदय (६) मुनि मनोरंजन शतक (७) प्रवचनसार-प्रतिरूपक (८) सम्यक्त्वसार शतक

हिन्दी रचनायें - १. ऋषि कैसा होता है ? २. देवागम स्तोत्र का पद्यानुवाद ३. समयसार - टीका ४. ऋषभावतार ५. भाग्योदय ६. गुणसुन्दर वृत्तान्त ७. कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन ८. सचित्त विवेचन ९. मानवधर्म १०. स्वामी कुन्दकुन्द और सनातन जैनधर्म ११. पवित्र मानव जीवन १२. सरल जैन विवाह विधि १३. तत्त्वार्थदीपिका १४. विवेकोदय १५. अष्टपाहुड का पद्यानुवाद १६. नियमसार का पद्यानुवाद ।

इन सभी रचनाओं का विशेष परिचय आगे दिया जायगा ।

चरणं पणमामि विशुद्धतरं - किसी के मनुष्य जीवन की सार्थकता तब होती है, जब उसके चरण चारित्र की ओर पड़ते हैं । उसे शान्ति में रस आता है । साहित्य सृजन रूप विपुल सम्पदा प्राप्त करने के अनन्तर भूरामल के मन में चारित्र धारण करने की बलवती इच्छा हुई, फलस्वरूप ब्रह्मचारी होते हुए भी विक्रम संवत् २००४ में अजमेर में आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज से व्रत रूप में ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण कर ली । रत्नकरण्ड श्रावकाचार में इस प्रतिमा के विषय में कहा है -

मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतिगन्धि बीभत्सम् ।
पश्यन्नङ्गमनङ्गाद् विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥१४३॥

जो मल का बीज है, मल की योनि है, जिससे मल प्रवाहित हो रहा है, जो दुर्गन्धयुक्त तथा भयावना है ऐसा शरीर को देखता हुआ जो कामसेवन से विरक्त होता है, वह ब्रह्मचर्य प्रतिमा वाला कहलाता है ।

ज्ञानार्णव में कहा है -

विदन्ति परमं ब्रह्म यत्समालम्ब्य योगिनः ।
तद व्रतं ब्रह्मचर्यं स्याद्धीरधौरेयगोचरणम् ॥ ज्ञानार्णव ११/१

जिस व्रत का आलम्बन कर योगीगण परब्रह्म परमात्मा को जानते हैं अर्थात् उसे अनुभवते हैं और जिसको धीर-वीर पुरुष ही धारण कर

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

सकते हैं, किन्तु सामान्य मनुष्य धारण नहीं कर सकते, वह ब्रह्मचर्य नामक महाव्रत है ।

एकमेव व्रतं श्लाध्यं ब्रह्मचर्य जगत्त्रये ।
यद्वि शुद्धिं समापन्नाः पूज्यन्ते पूजितैरपि ॥ ज्ञानार्णव ११/३

तीनों लोकों में एक ब्रह्मचर्य व्रत ही प्रशंसनीय है, जिसकी विशुद्धि को प्राप्त मनुष्य पूज्यों के द्वारा भी पूजे जाते हैं अर्थात् अर्हन्त भगवातन् ब्रह्मचर्य की पूर्णता को प्राप्त हुए हैं, अतः उनकी पूजा मुनि और गणधरादिक सब पूज्य पुरूष करते हैं ।

ब्र. भरामल जी ने इ. सन् १९४९ विक्रम संवत् २००६ में पैतृक घर का पूर्णतया त्याग कर दिया । उन्होंने इसी समय प्रकाशित हुए सिद्वान्त ग्रन्थ धवल, जयधवल एवं महाबन्ध का विधिवत् स्वाध्याय किया । २५ अप्रैल १९५५ ई. के दिन अक्षय तृतीया पर्व के शुभावसर पर ब्रह्मचारी जी ने क्षुल्लक दीक्षा भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा के समक्ष स्वयं ग्रहण की । प्राप्त आलेखों के आधार पर उन्होंने आचार्य श्री वीरसागर जी के समीप क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की और उन्हें श्री ज्ञानभूषण नाम दिया गया[१] ।

कुछ समय के अनन्तर उन्होंने आचार्य देशभूषण जी महाराज से ऐलक दीक्षा ली ।

प्रवचनसार में आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है - 'सामण्णं पडिवज्जदु जदि इच्छदि दुक्खपरिमोक्खं' अर्थात् यदि दुःखों से छुटकारा चाहते हो तो श्रामण्य अङ्गीकार करो । समताभाव से श्रमण होता है । समता में ही सुख है । इसके लिए करपात्री और पदयात्री बनना आवश्यक है श्रुत के साथ संयम आवश्यक है, बिना संयम के श्रुतज्ञान केवलज्ञान के रूप में फलित नहीं हो सकता । इन सब भावनाओं को मन में संजोए हुए विक्रम संवत् २०१४, ईस्वी सन् १९५७ में खानिया (जयपुर) में आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से ऐलक ज्ञानभूषण जी ने मुनि दीक्षा ग्रहण करली । दीक्षा ग्रहण के पश्चात भी उनकी श्रुताराधना चलती रही । उन्होंने राजस्थान के अनेक क्षेत्रों में बिहार किया ।

---

१ - जयोदय महाकाव्य का शैली वैज्ञानिक अध्ययन पृ. ७

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

शिष्य परम्परा - मुनिचर्या का कठोरता से पालन करते हुए समय व्यतीत हो रहा था कि उनके जीवन में एक महत्त्वपूर्ण घटना घटित हुई । जुलाई १९६७ ई. में मदनगंज-किशनगढ़ में सुदूर दक्षिण के ग्राम सदलगा, जिला बेलगाँव (कर्नाटक) का एक नवयुवक ब्रह्मचारी महाराज श्री की शरण में आया। उसे ज्ञान की पिपासा थी । महाराज श्री के चरणों में नमोऽस्तु करके जब वह बैठ गया तो महाराज श्री ने पूछा - क्या नाम है तुम्हारा?

- जी विद्याधर !

- हूँ - तुम विद्याधर हो । (मुस्कराकर) तो विद्या सीखकर उड़ जाओगे विद्याधरों की तरह । फिर मैं क्यों श्रम करूँ ?

- नहीं महाराज नहीं, मैं उड़ने नहीं आया । मैं रमने आया । गुरुवर ज्ञानसागर जी की चरणरज में रमने । विश्वास करें मैं ज्ञानार्जन कर भागूँगा नहीं । फिर बोले विद्याधर मुनिवर से, यदि आपको मेरी बातों पर विश्वास नहीं है तो मैं शपथ लेता हूँ, आज से ही आजीवन सवारी का त्याग करता हूँ ।

जरा सी बात पर महान् त्याग का गुण भा गया ज्ञानसागर जी को सोचने लगे - एक प्रश्न पर इतना बड़ा त्याग कर दिया, तो मेरे संकेतों पर जाने क्या क्या त्याग कर सकता है[१] ।

विद्याधर का आचरण देख मुनि ज्ञानसागर जी के ऊपर उसका विश्वास जमता गया । **महाराज श्री** उसे लगातार कई कई घण्टे पढ़ाने लगे । विद्याधर मनोयोग से **पढने लगे** । गुरु ज्ञानासागर ने जब विद्याधर को अच्छी तरह परख लिया तो आषाढ़ शुक्ल पंचमी, विक्रम संवत् २०३५ (३० जून १९६८) के दिन अजमेर स्थित सोनी जी की नसिया के पास बाबाजी की नसियां के प्रांगण में ब्र. विद्याधर को विशाल जनसमुदाय के मध्य मुनि श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने मुनि दीक्षा प्रदान की । अब ब्र. विद्याधर का नाम मुनि विद्यासागर हो गया । मुनि विद्यासागर महाराज ने अपने ज्ञान और चारित्र गुण से अपने गुरू की कीर्ति को आगे बढ़ाया। आज आचार्य विद्यासागर के रूप में उनकी कीर्ति दिग्दिगन्त व्यापिनी हो रही है और इस बीसवीं शताब्दी में जिनशासन

---

१ सुरेश सरलः विद्याधर से विद्यासागर पृ. ९९

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★
की प्रभावना करने वाले वे महान् आचार्य हैं । उन्होंने अनेक धार्मिक कृतियों की रचना की है, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है -

काव्य संग्रह - चेतना के गहराव में २. डूबोमत लगाओ डुबकी ३ तोता क्यों रोता ? ४. दोहा-दोहन ५. नर्मदा का नरम कंकर ६. मूकमाटी-(महाकाव्य)

पद्यानुवाद - १. इष्टोपदेश २. गोम्मटेश थुदि ३॥ द्रव्य संग्रह ४. योगसार ५. समाधितन्त्र ६. एकीभाव स्तोत्र (मन्दाक्रान्ता छन्द में) ७. कल्याण मन्दिर स्तोत्र (वसन्ततिलका छन्द में) ८. देवागम स्तोत्र ९. पाशकेशरी स्तोत्र १०. स्वयम्भू स्तोत्र - समन्तभद्र की भद्रता (ज्ञानोदय छन्द में) ११. रत्नकरण्ड श्रावकाचार (रयण मंजूषा) १२. समणसुत्तम् (जैनगीता) वसन्ततिलका छन्द में १३. समयसार कलश (निजामृत पान) १४. आत्मानुशासन (गुणोदय) ज्ञानोदय छन्द में १५ अष्ट पाहुड १६. द्वादश अनुप्रेक्षा (संस्कृत) १७. नियमसार १८. प्रवचन सार १९. समयसार (कुन्दकुन्द का कुन्दन) वसन्ततिलका छन्द में २० पञ्चास्तिकाय (संस्कृत में)

शतक संग्रह - १. श्रमण शतकम् (संस्कृत तथा हिन्दी) २. निरंजन शतकम् (संस्कृत द्रुत विलम्बित तथा हिन्दी वसन्ततिलका छन्द में) ३. परिषहजय शतकम् (ज्ञानोदय) संस्कृत तथा हिन्दी में ४. भावना शतकम् (तीर्थङ्कर ऐसे बने (संस्कृत तथा हिन्दी) आद्यान्त यमकालंकार ५. सुनीति शतकम् (संस्कृत तथा हिन्दी में) ६. निजानुभव शतक (हिन्दी) ७. मुक्तक शतक (हिन्दी में)

प्रवचन संग्रह - १. आत्मानुभूति ही समयसार २. आदर्श कौन ३. गुरूवाणी ८. जयन्ती से परे ५. जैनदर्शन का हृदय ६. डबडबाती आँखें ७. तेरा सो एक ८. न धर्मो धार्मिकैर्विना ९. प्रवचन पारिजात १०. प्रवचन प्रदीप ११. प्रवचन प्रमेय १२. ब्रह्मचर्य - चेतन का भोग १३ भक्त का उत्सर्ग १४ भोग से योग की ओर १५. मर हम. - मरहम बनें १६. मानसिक सफलता १७. मूर्त मे अमूर्त की ओर १८. व्यामोह की पराकाष्ठा १९. सत्य की छांव में २०. अकिञ्चित्कर २१. प्रवचनामृत २२. प्रवचन पर्व २३. विद्यावाणी २४. चरण आचरण की ओर । २५. मुक्ति पथ के बीज ।

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

स्फुट रचनायें - १. आचार्य श्री शान्तिसागर स्तुति २. आचार्य श्री वीरसागर स्तुति ३. आचार्य श्री शिवसागर स्तुति ४. आचार्य श्री ज्ञानसागर स्तुति (५) शारदा स्तुति (संस्कृत तथा हिन्दी) ६. अनागत जीवन ७. अब मैं मन मन्दिर में रहूँगा ८. अहो ! यही सिद्ध शिला ९. आत्माभिव्यक्ति १०. निज को जान जरा ११. परभव त्याग तू बन शीघ्र दिगम्बर १२. भटकन तब तक भव भव में जारी १३. मुक्ति ललना को जिया कब वरेगा ? १४. विज्जाणुवेक्खा (प्राकृत) १५. जम्बू स्वामी चरित्र (अप्राप्य) १६. समकित लाभ १७. My self १८. अनर्थेरमूल (बंगला) १९. नदीरशीतल जल (बंगला)

वर्तमान आचार्य श्री विद्यासागर जी के अतिरिक्त मुनि श्री विवेक सागर जी, ऐलक श्री सन्मतिसागर जी, क्षुल्लक श्री सुखसागर जी, क्षुल्लक श्री अदिसागर जी, क्षुल्लक श्री विजयसागर जी, क्षुल्लक श्री सम्भव सागर जी तथा क्षुल्लक श्री स्वरुपानन्द जी ने मुनि श्री ज्ञानसागर जी का शिष्यत्व प्राप्त किया ।

आचार्य पद - नसीराबाद (जिला - अजमेर, राजस्थान) की जैन समाज ने फाल्गुन कृष्ण पञ्चमी वि. सं. २०२५ शुक्रवार ७. फरवरी सन् १९६९ के दिन मुनि ज्ञानसागर को आचार्य पद से अलङ्कृत किया । उसी दिन मुनि श्री विवेकसागर जी ने आपसे दीक्षा ग्रहण की थी ।

चारित्र चक्रवर्ती पद - २० अक्टूबर १९७२ में क्षुल्लक श्री स्वरुपानन्द जी की दीक्षा के अवसर पर नसीराबाद की जैन समाज ने आपको 'चारित्र चक्रवर्ती' उपाधि से सम्बोधित कर अपने को कृतकृत्य माना ।

समाधि की साधना - जैन मुनि के लिए यह विहित है कि जब वह यह समझे कि अब यह शरीर तप के योग्य नहीं रहा तो तत्काल सल्लेखना धारण कर ले । भली प्रकार काय और कषाय के कृश करने का नाम सल्लेखना है । लगभग ८० वर्ष की उम्र में अपने शरीर को निरन्तर क्षीण होता हुआ जानकर नसीराबाद में मगसिर कृष्णा द्वितीया वि. सं. २०२९ बुधवार तदनुसार २२ नवम्बर १९७२ के दिन अपार जनसमूह के मध्य आपने अपने सुयोग्य शिष्य मुनि विद्यासागर जी से निवेदन किया "यह नश्वर शरीर धीरे-धीरे क्षीण होता जा रहा है, अब मैं आचार्य पद छोड़कर पूर्णरुपेण आत्मकल्याण में लगना चाहता हूँ । जैनागम के अनुसार ऐसा करना आवश्यक और उचित

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

है, अतः मैं अपना आचार्य पद तुम्हें सौंपता हूँ ।" अपने गुरू के मुख से यह वचन सुन मुनि विद्यासागर आश्चर्यान्वित हो गए । भावुकता के उन क्षणों में वे अपने कर्त्तव्य का निश्चय नहीं कर सके । आचार्य श्री ने उन्हें पुनः समझाकर अपने आसन का त्याग कर दिया और मुनि विद्यासागर जी को अपने आसन पर बैठा दिया, स्वयं नीचे आसन पर बैठ गए । विरक्ति के इन क्षणों में उन्होंने आचार्य विद्यासागर से निवेदन किया -

हे गुरुवर आचार्य विद्यासागर जी महाराज ! मेरे ऊपर कृपा करो, मैं आपके सान्निध्य में सल्लेखना ग्रहण करना चाहता हूँ, मेरे ऊपर अनुग्रह कीजिए।

आचार्य श्री विद्यासाधर जी ने अपने गुरु के भावों को भली भाँति हृदयङ्गम कर उन्हें सल्लेखना ग्रहण करायी । उन्होंने धीरे-धीरे समस्त रसों का त्याग कर अन्त में जल का भी त्याग कर दिया और समता भावपूर्वक ज्येष्ठ कृष्ण अमावस्या (१ जून १९७३) के दिन प्रातः दस बजकर ५० मिनट पर देहोत्सर्ग किया ! यद्यपि उनके नश्वर शरीर का अन्त हो गया, किन्तु वे अपनी साहित्यिक मनीषा और चारित्र महिमा से युगों-युगों तक लोगों के हृदय में जीवित रहेंगे ।

आचार्य श्री ज्ञानसागर : मनीषियों की दृष्टि में

आचार्य श्री विद्यासागर -

अपनी भुजाओं द्वारा अपार सागर को जिस प्रकार पार करना कठिन है, उसी प्रकार गुरू की महिमा का मन में विचार कठिन है, किन्तु उस सागर के तट पर जाकर विनयाञ्जलि अर्पित कर सकते हैं, इतनी क्षमता तो हमारी है । आचार्य ज्ञानसागर जी ने जो दायित्व मुझे दिया है, उसका निर्वाह करने का ध्यान जीवन की हर घड़ी में चाहे दिन हो या रात हर समय विद्यमान रहता है । चलना कठिन है, चलाना उससे भी अधिक कठिन है । बहुत चलने वाले व्यक्ति को भी ऐसा लगता है कि चलाने की क्षमता न हो । बहुत बड़ा विद्वान भी पढ़ाते समय ऐसा लगता है, जैसे स्वयं पढ़ रहा हो । पुत्र पिता का उत्तराधिकारी होता है, पिता अपना वैभव अन्त में पुत्र को सोंप जाता है । वह चाहता है कि जो परम्परा चली आ रही है,

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆
वह चलती रहे । यह बुहत कठिन कार्य है, जो चलाता है, वही जानता है । करना सब निमित्त नैमित्तिक है, किन्तु एक मनोविज्ञान बनता है, उसको पार करना मुश्किल होता है । होता वही है, जो होना होता है । चार दिन के अन्तराय वाले को पहले दिन कह दिया जाय कि तुम्हें चार दिन भोजन नहीं मिलेगा तो हो सकता है, वह व्याकुल हो जाय । वह खाने के विकल्प के साथ दिन निकाल देता है । दिन निकल रहे हैं, किन्तु पता नहीं चल रहा है । जिस प्रकार ज्ञानसागर जी ने सल्लेखना धारणा की, वहीं तक मुझे पहुँचना है । परीक्षार्थी को नम्बर मिलते मिलते कट जाते हैं, ये परीक्षा की घड़ियाँ है । असंख्यात गुणी निर्जरा की तैयारियाँ हैं । सन्तों ने कहा - परीक्षा में गुजरना अनिवार्य है । आत्मा की शक्ति का श्रद्धान इससे हो जाता है। अनुभूतियाँ घड़ियों में निकलने से ही होती है । प्राणी जिस रुप में आया था और जैसा रहना चाहता था, वैसा नहीं रह सका । सन्तों ने कहा कि संसारी प्राणी निर्णय लेता है, किन्तु अनुभूति से पीठ फेर लेने पर निर्णय मिट जाता है, इस प्रकार विषमता चलती रहती है, किन्तु केवली की आज्ञा का पालन करना है । प्रत्येक समय यदि हम केन्द्र से जुड़े रहें तो अच्छा काम चल सकता है । यदि हम केन्द्र से हट जाँय तो अपने पास कुछ नहीं रहता । अपनी परिधि में रहकर काम करना होता है । महाराज श्री ज्ञानसागर अपने आपको अनेक रूप में कभी अनुभव नहीं करते थे । वे मानते थे कि यह मन आत्मोत्थान का साधन है । ज्ञानसागर महाराज जहाँ कहीं रहते थे, जागृत रहते थे । चन्द माह, वर्षों में उन्होंने इस कला को समझने का प्रयास किया । उन्होंने कहा था - एक वृद्ध आया था । कुछ जवानों ने देखा कि वह कुछ ढूँढता आ रहा था । जवानों ने कहा - क्या गिर गया है, क्या हम ढूँढ सकते हैं । बूढे ने उत्तर दिया - और कुछ नहीं, मेरी जवानी के मोती गिर गए हैं, आप उन्हें नहीं ढूँढ सकते, क्योंकि आपकी कमर टेढ़ी नहीं है ।

मैं अब भी ज्ञनसागर जी के निर्देश के अनुसार चल रहा हूँ । वृद्धों के सामने हम वृद्ध कभी नहीं हो सकते । पिता के सामने लड़का हमेशा लड़का ही माना जाएगा । हमारी प्रवृत्ति ऐसी हो गयी है कि शास्त्रों का अवलोकन करने के बाद भी उन शास्त्रकारों के प्रति नम्रता नहीं आती ।

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

हम जब शास्त्रों को शत प्रतिशत स्वीकार करेंगे तो हमारी सुरक्षा नियम से होगी, इससे हमें बल मिल जायगा । हमारे मन में धर्म का निवास होगा-

देवा वि तं नमस्संति जस्स धम्मे सया मणो ।

जिनेन्द्र का श्रद्धानी जङ्गल में भी मङ्गल करता है । शासन देवता उस शासन के भक्तों की सदैव रक्षा करते हैं । यही शासन देवता का अर्थ है, किन्तु हमें उस सासन देवता की आवश्यकता नहीं; क्योंकि महान् शरण प्राप्त हो गयी है । दोषों का होना स्वभाव है, किन्तु मन, वचन, काय से दोष लगने का व्यापार नहीं होना चाहिए । 'येन अयं ज्ञानसागरतां गत:' कहकर ज्ञानसागर महाराज ने अपने गुरू का स्मरण किया था । ज्ञान उनका कितना था, यह मुझे नहीं कहना, किन्तु सम्यग्ज्ञान उन्होंने कितना दिया, कितनी रक्षा की, यह महत्त्वपूर्ण है । सम्यग्ज्ञान को छोड़कर ज्ञान की रक्षा करने वाले बहुत हैं, किन्तु हमारा प्रयोजन सम्यग्ज्ञान से है । ज्ञानसागर महाराज कार्य से ज्ञानसागर थे । "आगम चक्खू साहू" मैंने उनमें पाया । मैंरे पुण्य का उदय था । उनके प्रताप से आस्था जमती रही । वे हमेशा हमेशा के लिए मेरी धारणा में रहेंगे । मैं कैवल्य प्राप्ति के बाद भी उन्हें नहीं भूलूँगा । आचार्य के लक्षण मैने उनमें अक्षरश: पाए । भाषा शब्द की नहीं, भाव की होती है । उन्होंने मुझसे कहा था कि बहुत बिलम्ब से आए हो । फिर भी मेरी धारणा उन्होंने मजबूत बनायी । विश्वासपात्र होना आवश्यक है, बाद में सब कुछ मिल जायगा । मैंने उन्हें विश्वास दिलाया था कि मैं भागूँगा नहीं । मैंने ब्रह्मचारी अवस्था में ही वाहन त्याग कर दिया । ग्यारह माह में ही उन्होंने मुझे रत्नत्रय का लाभ दिया । मैं सदैव उन्ही के पास रहता। उन्होनें मेरी परीक्षा ली थी । ज्ञान की परीक्षा तो ली ही नहीं, क्योंकि यहाँ था ही क्या ? उन्होंने कहा था कि सिलेट हमेशा ही कोरी रखना । ऐसी सिलेट पर भाव कभी भी लिखे जा सकते हैं । कोई वस्तु लेते समय खाली हाथ रखना पड़ता है । जैसे आप टेलिविजन में चित्र देखते हैं, वैसे ही वे सारे सामने आ जाते हैं, चित्र की आवश्यकता नहीं है । जैसी धारणा बना लेगें वैसा ही मनोविज्ञान बन जाता है । ऐसा हो जाय तो मृत्यु की पीठ को भी हम देख सकते हैं । उनके द्वारा प्रत्येक क्षण सीखा है । उन्होंने दिखाया है कि सल्लेखना कैसी होती है । उनकी मानसिक साधना तेज थी।

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

वे सल्लेखना के स्त्रोत को पकड़े हुए थे । वे एकत्वविभक्त तक पहुँच चुके थे । मन पर उन्होंने विजय पा ली थी । उन्हें सहयोग की आवश्यकता नहीं थी । योगी के लिए सहयोग की आवश्यकता नहीं होती, वे तो योगीन्द्र थे। वे सरस्वती का सदैव उपकार मानते थे । धन्य है, उनका जीवन । इस जीवन में तो अब ऐसा दर्शन असम्भव है । यह दर्शन हो, यही भावना है । सम्यग्ज्ञान की किरण प्रस्फुटित होती रहे । मैं भावना करता हूँ कि आपके समान मैं भी साधक बनूँ ।

गुरुवर ज्ञानसागर - श्रद्धांजलि

निहालचन्द जैन, एम. एस. सी.

राजस्थान की राणोली गाँव की माटी ने,
वैराग्य की रंगरोली बन -
ज्ञान के क्षीरोदधि - पूज्य ज्ञानासागर को सृजा था ।
जिनकी चित्मय चितेरी आँखों ने -
आगम के प्राङ्गण में -
एक ऐसा महाशिष्य खड़ा कर दिया,
जिनके नाम के विशेषण में
शब्द जी उठते हैं ।
भटकते अर्थ, सार्थक बन जाते,
जिनकी वाणी से झरकर
जैसे शिलाकार एक ही मूर्ति में
चौबीसों तीर्थङ्करों की अनुकृतियाँ उकेर देता है,
वहाँ देह रूप विसर्जित विदेह वीतराग रह जाता है ।
ऐसे ही आचार्य विद्यासागर हैं,
जिनके नेत्रों में झलक रहे
पूज्य ज्ञानसागर हैं ।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

यह युग, बुन्देल भूमि, भारत भू
चिर ऋणी रहेगी -
क्योंकि उन्होंने केवल एक शिष्य को
अपना आचार्यत्व सोंपकर
षट्खण्डागम, समयसार, प्रवचनसार आदि
सभी शास्त्रों को जीवन्त कर दिया ।
चारित्र ने शरण खोज ली -
जिनके चरणों में पाप-पुण्य लुण्ठित हैं ।
जी बालक से निश्छल मृदुल
वीतराग की तरुणाई से तेजस्विता
ज्ञान वय से प्रौढ़ व वृद्ध हैं जो ।
बालक तीर्थङ्कर के रूप को देखने
जो इन्द्र
हजार आँखों से भी नहीं अघाया
वह इन्द्र
हमें भी चार आँखें क्यों नदीं दे पाया
जो एक साथ
दो आँखों से चरणों को
दो से स्मित मुख को निहारती रहें
यदि आज आइन्स्टीन होता
तो उसे इस धर्ममण्डप में बुलाकर
कहता-कि देख लो -
तो एक घण्टा भी -
आधा घण्टा रह जाता है ।
धूल बन जाती है मकरन्द

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

जिनके चरण-कमलों के सुयोग से -
ऐसे युगल चरणों को
श्रद्धा समर्पित है
ऐसे महाशिष्य के निमित्त से
रोज रोज गुरुवर ज्ञानासागर
याद आ जाते हैं
अत: इस चौदहवीं पुण्य तिथि पर
हम श्रद्धावनत हैं
विनत हैं, प्रणत हैं ।

श्री मूलचन्द लुहाड़िया (किशनगढ़) - मैं आचार्य ज्ञानसागर महाराज के सम्पर्क में आकर भी अज्ञानसागर बना रहा । वे अपनी मान्यता और सिद्धान्तों के साथ कोई समन्वय नहीं करते थे । उनकी मान्यता थी कि जो वनस्पति अग्निपक्व नहीं होती, वह अचित्त नहीं होती । उन्होंने विद्यासागर के निर्माण में अपने जीवन के अमूल्यक्षण लगाए । उनका सबसे बड़ा ग्रन्थ विद्यासागर है । उनके व्यक्तित्व की झलक आचार्य विद्यासागर के कृतित्व से प्राप्त होती है । जन्म पर हमारा कोई वश नहीं, पर मरण पर हमारा वश है, जो मृत्यु पर नियन्त्रण करता है, वह अमर बनता है । जो जन्म मिटाता है, वह मरण प्रशंसनीय है । जो मरण से नहीं डरते, मरण उससे डर जाता है । उन्होंने हँसते हँसते मरण किया । आचार्य कुन्दकुन्द की गाथायें उनकी आँखों में चमक उत्पन्न करती थी । ज्ञानसागर महाराज कहा करते थे कि मैं प्रचारक नहीं साधक हूँ । यही कारण है कि बहुत कम लोग उन्हें जान पाए ।

ब्रह्मचारिणी विमलेश - आचार्य ज्ञानसागर के समाधिदिवस पर आज हमने समाधि देवता को पुकारा है । उसको अन्तरङ्ग में बैठालने के लिए अपने हृदय को विशाल बनाना होगा । मृत्यु जीवन का अन्तिम इम्तहान है समाधि मंजिल है, साध्य है । सन्मार्ग नहीं होगा तो साध्य सिद्ध नहीं हो सकता । पहले मार्ग समझें, तब जाँय । आदमी बनना पहले जरूरी है, धार्मिक बनना बाद में । आदमी का कर्त्तव्य है कि दूसरों को बर्दास्त करे । दूसरों

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

के बडप्पन को बर्दास्त करे । धर्म का पहला पाठ है - पाखण्ड को तोड़ो। हम पाखण्ड को नहीं तोड़ सके तो धर्मात्मा नहीं बन पायेंगे । जीवित धर्म अपनायें तभी धर्मात्मा बनेंगे ।

जो उम्र बुढ़ापे के आँगन में पली हो ।
वह बिना पंख उड़ जाय तो क्या हो ?

क्षुल्लक गुणसागर जी - (वर्तमान श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज) - **बिना तप के कुछ** उपलब्ध नहीं होता, चाहे मुनि हो या गृहस्थ । जीने की एक कला होती है और मरण की भी एक कला होती है । साधु साधना ही कर सकता है । विद्वानों का योग साहित्य, पुरातत्त्व और इतिहास के लिए आवश्यक है । जैसी निर्मलता गृहस्थ अवस्था में ज्ञानसागर जी के पास थी, वैसी हमारे विद्वानों में आना चाहिए । समाज को विद्वानों का भार लेना चाहिए । विद्वानों का परिश्रम विद्वान् जान सकता है ।

ऐलक अभयसागर जी -

यही जीने का मकसद था, यही थी आरजू उनकी ।
कि गर्जे निकले जो मुल्क की खिदमत में निकले ॥

मुनि **श्री** १०८ समाधिसागर जी - रत्नत्रय खड्ग से मोह के सिर को जिन्होंने उतार दिया, ऐसे ज्ञानसागर थे । ऐसा साधु होना अब कठिन है, किन्तु ऐसा नहीं, कह सकते कि दीपक बुझ गया । प्रकाश चला गया, ऐसा कह सकते हैं । कहा है -

निर्धूमवर्तिरपवर्जित तैलपूरः कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिता चलानां, दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः ॥
भक्तामर स्तोत्र १६

अर्थात् आप उस सम्पूर्ण लोक को प्रकाशित करने वाले अद्वितीय दीपक हैं । अन्य दीपक तो धुयें तथा बाती से मुक्त होते हैं, तेल से भरे रहते हैं तथा वायु उन्हें बुझा देती है, किन्तु आपके द्वारा दिखाया गया मार्ग धुंआ, बत्ती और तेल वाले दीपक से रहित है तथा उस अद्वितीय दीपक को पर्वत को चलायमान करने वाली वायु भी कभी बुझा नहीं सकती है ।

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

पं. जवाहर लाल जैन (भिण्डर) - आचार्य ज्ञानसागर जी आचार्य शिवसागर जी के शिष्य थे । मुनि श्री श्रुतसागर जी ने ज्ञानसागर जी को धवला की पहली पुस्तक पढाई थी । त्यागियों में प्रायः ज्ञानी नहीं पाए जाते । आचार्य ज्ञानासागर जी इसके अपवाद थे ।

डॉ. जयकुमार जैन - आचार्य ज्ञानसागर जी का जयोदय और वीरोदय काव्य बीसवीं सदी का उत्कृष्ट कोटि का काव्य है । आगे इस प्रकार का संस्क्त में काव्य लिखा जायगा, इसमें सन्देह है ।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन (बुरहानपुर) - आचार्य ज्ञानसागर जी ने लोक परम्परा का अन्धानुकरण नहीं किया, उन्होंने बैद्धिकता को महत्त्व दिया । जीवन में जागरण आवश्यक है । जो जीवन में जागृत होता है, उसकी मौत भी जागृति में होती है । २४ तीर्थङ्करों को छोड़कर बाकी सब जन्म से बैहोशी में पैदा होते हैं । २४ तीर्थङ्कर होश में पैदा होते हैं, क्योंकि वे जन्म से मति, श्रुत और अवधिज्ञान के धारी होते हैं ।

पं. बच्चूलाल जैन (कानपुर) - हमने गङ्गा का प्रदूषण रोकने की योजनायें तो बनायी हैं । किन्तु अपना प्रदूषण हमने नहीं हटाया । आचार्य ज्ञानसागर अपना प्रदूषण हटाने हेतु कृतसंकल्प थे ।

पं. दयाचन्द जैन (सागर) - हमें ज्ञात हुआ है कि पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी को समान गुरुवर ज्ञानसागर जी के भी गुरु पं. अम्बादत्त शास्त्री थे। दोनों शिष्यों की छाप बुन्देलखण्ड पर पड़ी जो अमिट है ।

डॉ. कस्तूर चन्द कासलीवाल - वर्तमान शताब्दी में संस्कृत भाषा में महाकाव्यों की रचना करने वाले विद्वानों में जैनाचार्य ज्ञानसागर जी महाराज का नाम विशेष उल्लेखनीय है । वे 50 वर्षों से भी अधिक समय तक संस्कृत वाङ्मय की अनवरत सेवा करने में लगे रहे ।

आचार्य श्री के दर्शनों का सौभाग्य लेखक को मिल चुका है । वे काय से गौरवर्ण, ध्यान एवं तप में सन्नद्ध, पठन-पाठन एवं साहित्य निर्माण में दत्तचित्त, सर्वथा दिगम्बर, २४ घण्टों में एक ही बार आहार एवं जलग्रहण और वह भी निरन्तराय, अस्सी वर्ष को पार करने के पश्चात् भी अपनी

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆
क्रियाओं एवं पर के प्रति पूर्णतः सजग, श्रावक-श्राविकाओं को प्रतिदिन ज्ञान देने वाले, अपने संघ के साधुओं की दिनचर्या के प्रति सजग, जागरूक उनको पढ़ाने की क्रिया में सलग्न रहने पर भी स्वयं के द्वारा साहित्य निर्माण में व्यस्त रहने वाले आदि कुछ विशेषताओं से युक्त आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के कभी भी दर्शन किए जा सकते थे[१]।

डॉ. हरिनारायण-दीक्षित - मानव समाज का कल्याण करने में महाकवि ज्ञानसागर की काव्यसम्पत्ति महाकवि अश्वघोष की काव्यसम्पत्ति से भी अधिक मूल्यवती है, क्योंकि महाकवि ज्ञानसागर ने भारतीय मनीषा प्रसूत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह नामक पाँचों ही सार्वभौम महाव्रतों के परिपालन की सत्प्रेरणा देने की इच्छा से एक चम्पू काव्य और चार महाकाव्यों की सरस सर्जना करके मानव समाज को संयपूर्वक अपना जीवन बिताने का सर्वाङ्गीण सन्देश दिया है। उनके दयोदयचम्पू के नायक का जीवन पाठकों के मनः पटल पर अहिंसा की छवि बनाता है समुद्रदत्त चरित्र का नायक सत्य और अस्तेय की समुचित शिक्षा देता है, वीरोदय के नायक श्री महावीर ब्रह्मचर्य के प्रति आस्था जगाते हैं, जयोदय का नायक अपरिग्रह के महत्त्व को अभिव्यक्त करता है और सुदर्शनोदय के नायक के जीवन में आने वाले घात प्रतिघात इन उपर्युक्त जीवनोपयोगी सभी महाव्रतों के पालन की शिक्षा के साथ ही साथ अपने व्यक्तित्व की पवित्रता की धीरता पूर्वक रक्षा करते रहने का प्रभविष्णु सन्देश देते हैं। उल्लेखनीय है कि महाकवि ज्ञानसागर आजीवन ब्रह्मचर्य महाव्रत के समानान्तर पर गृहस्थ जीवन के लिए परमोपयोगी परदारविरति को भी नैष्ठिक ब्रह्मचर्य महाव्रत के ही समान मानते हैं। समाज के शाश्वत हित हेतु उनकी यह विचारधारा निश्चय ही उनकी स्वतन्त्र मनीषा एवं दार्शनिक क्रान्ति की परिचायिका है। फलस्लवरूप महाकवि ज्ञानसागर के ये काव्य समवेत रुप में मानव समाज का कल्याण करने में अभी तक अनुपम ही हैं इसके अलावा साहित्यिक दृष्टि से भी ये काव्य कालिदास, भारवि, माघ और श्रीहर्ष के काव्यों से प्रतिस्पर्द्धा सी करते हुए प्रतीत होते हैं। कथावस्तु, चरित्र चित्रण, भावपक्ष, कलापक्ष, वर्णनविधान, परिवेष आदि

१. वीर शासन के प्रभावक आचार्य पृ. २७.

की दृष्टि से भी ये काव्य अत्यन्त सजीव और सहृदयहृदयाह्लाद कारी हैं । इनसे संस्कृत साहित्य की अभूतपूर्व श्री वृद्धि हुई है, यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं होगी[१] ।

डॉ. किरण टण्डन - श्री ज्ञानसागर के पाँचों संस्कृत काव्य ग्रन्थ संस्कृत साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान पाने के योग्य हैं । काव्य के माध्यम से दर्शन की शिक्षा देने में जैन धर्म की वकालत करने में कविवर को स्पृहणीय सफलता मिली है । व्यक्ति या तो कवि होता है या दार्शनिक ही, किन्तु हमारे कवि दार्शनीक भी हैं । इसलिए उनको संस्कृत साहित्य में आधुनिक अश्वघोष की संज्ञा दी जानी चाहिए । अनुप्रास की व्यापक एवं नवीन परम्परा को चलाने और निभाने के कारण 'उपमा कालिदासस्य' के समान ही 'अनुप्रासो ज्ञानसागरस्य' की उक्ति भी असङ्गत नहीं होगी । प्रायः शब्दालङ्कारों का प्रयोग करने के कारण कवियों के काव्य दुरुह हो जाते हैं, जब कि हमारे कवि के काव्य अन्त्यनुप्रास के सुष्ठु प्रयोग से और भी अधिक प्रवाहमय हो गए हैं । अतः पाठकों से निवेदन है कि जातीयता और साम्प्रदायिकता को भूलाकर श्री ज्ञानसागर का संस्कृत कवियों में और उनके काव्यों का संस्कृत काव्यों में उच्चस्थान प्राप्त स्वीकृत करें[२] ।

आचार्य प्रवर श्री ज्ञानसागर जी महाराज के विषय में मैं कुछ कह पाऊं यह तो सूर्य को ज्योति दिखाने जैसी बात हो गई । परमपूज्य आचार्य श्री ने जो जिनवाणी माँ की सेवा की है वह अपूर्व है । जयोदय, वीरोदय जैसे महाकाव्य संस्कृत में लिखकर आप कालीदास को भी पीछे छोड़ गये। आपकी अमूल्य कृति मानव धर्म जैन समाज को ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानव समाज की नैतिकता व मानवता का संदेश देती है । जब तक आपकी वाणी विद्या, सुधा का रूप लेगा इस भूमण्डल पर गूंजती रहेगी पुनः श्री चरणों में यमन करते हुये उन महान आत्मा को सम्पूर्ण मानवता की आत्मा के रूप में कोटि-कोटि वेदन ।

---

१. महाकवि ज्ञानसागर के काव्य एक अध्ययन भूमिका पृ. ७
२. महाकवि ज्ञानसागर के काव्य एक अध्ययन पृ. ४३९

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

दयोदय चम्पू

सात लम्बों में विभक्त यह एक गद्यपद्यमयी संस्कृत रचना है । यह चम्पू काव्य की श्रेणी में आता है । दया की भावना के फलस्वरूप एक सामान्य व्यक्ति कैसे अपना उत्कर्ष करता है, यह बतलाना यहाँ कवि का अभिप्रेत है । कवि ने स्थान स्थान पर अनुप्रास, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, उपक, विषम इत्यादि अलङ्कारों, का समावेश किया है । पद्यों में अनुहष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ, वसन्ततिलका, वियोगिनी, द्रुतविलम्बित, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित इत्यादि छन्दों का प्रयोग है । दयोदय की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है -

मालव देश की उज्जयिनी नगरी में वृछभदत्त नामक राजा राज्य करता था । उसकी रानी वृषभदत्ता थी । वृषभदत्त के राज्य में गुणपाल नामक सम्पन्न राजश्रेष्ठी था । उसकी पत्नी का नाम गुणश्री था और उसके विषा नामक एक कन्या थी । एक बार सेठ गुण पाल ने भोजन करने के बाद जूठे वर्तन बाहर डाल दिए । एक सुन्दर बालक उन वर्तनों में जूठन खाकर अपनी क्षुधातृप्ति करने लगा । उसी समय दो मुनि जो कि गुरु-शिष्य थे, उधर से निकले । गुरु ने अपने शिष्य से कहा कि यह बालक, गुणपाल का जामाता होगा । शिष्य के पूछने पर मुनि ने बालक की पूर्व कथा बतलायी -

अवन्ती देश में शिप्रा के किनारे शिंशपा नामक गाँव था, उसमें एक धीवर रहता था, जिसका नाम मृगसेन था । उसके माता-पिता का नाम क्रमशः भवश्री और भवदेव था और उसकी पत्नी का नाम घण्टा था । एक बार मृगसेन मछलियाँ पकड़ने जा रहा था । मार्ग में उसने श्रद्दापूर्वक एक दिगम्बर मुनिराज के दर्शन किए । मुनिराज ने उसे नियम दिलाया कि मछलियाँ पकड़ते समय जो मछली पहले जाल में फँसे, उसे छोड़ देना । धीवर ने यह बात स्वीकार कर ली । जब वह शिप्रा के किनारे पहुँचा तो उसके जाल में एक रोहित मछली फँसी । उसने उसे चिन्हित कर नदी में छोड़ दिया । बार-बार उसने जाल डाला और वही मछली फँसी, प्रतिज्ञानुसार उसे छोड़ना पड़ा। अन्त में जब सांय काल हो गया और कोई मछली उसके जाल में नहीं फँसी तो वह खाली हाथ घर आ गया । पति को खाली हाथ देख घण्टा ने कारण पूछा, पति ने ली हुई प्रतिज्ञा के विषय में सुना दिया । यह सुनकर पत्नी आगबबूला हो गयी । उसने अपने पति को बाहर निकाल दिया ।

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

मृगसेन एक धर्मशाला में जाकर विश्राम के लिए लेट गया । इसी समय एक साँप ने उसे डस लिया और उसकी मृत्यु हो गयी । वह मृगसेन धीवर ही इस बालक के रूप में जन्मा है ।

पति को घर से निकालकर घण्टा को बड़ा पश्चाताप हुआ । वह व्याकुल होकर उसे ढूँढती हुई धर्मशाला में पहुँची । वहाँ उसने अपने पति को मृत पाया। शोक से व्याप्त होकर वह करूण क्रन्दन करने लगी और उसने अहिंसा व्रत पालने का निश्चय किया । इसी समय उसी सर्प ने जिसने कि मृगसेन को काटा था, घण्टा को भी काट लिया । वही घण्टा गुणपाल की कन्या विषा हुई है । पूर्वजन्म के सम्बन्ध के कारण इस जन्म में भी ये पति-पत्नी होंगे ।

सेठ गुणपाल मुनि की बात सुनकर आश्चर्य में पड़ गया । उसने सोमदत्त को मारने का निश्चय किया । उसने उस बालक, जिसका नाम सोमदत्त था, को मारने के लिए उसे एक चाण्डाल को सौंप दिया । चाण्डाल ने दयावश उसे मारा नहीं और गाँव के बाहर नदी के किनारे एक वृक्ष के नीचे डाल दिया ।

दूसरे दिन प्रात: काल गोविन्द नामक ग्वाले को वह बालक मिला। उसने अपनी पत्नी धनश्री को दे दिया । वहाँ वह सुख से रहने लगा ।

एक दिन गुणपाल गोविन्द की बस्ती में आया । उसे सोमदत्त विषय में जान कारी मिली । सोमदत्त से स्नेह सम्बन्ध स्थापित कर एक बार उसके हाथ उसने एक पत्र भेजा और कहा कि मेरे घर पर दे आओ । सोमदत्त पत्र लेकर आ रहा था कि रास्ते में थकान के कारण एक वृक्ष के नीचे सो गया । वहां एक वसन्तसेना वेश्या आयी हुई थी । उसने सोमदत्त के गले में बँधाहुआ पत्र पढ़ा जिसमें गुणपाल ने अपनी पत्नी और पुत्र को लिखा था कि सोमदत्त को विष दे दिया जाय । वसन्त सेना ने 'विषं सन्दातव्यम्' के स्थान पर विषा सन्दातव्या लिख दिया और पत्र को पूर्ववत् गले में बाँध दिया ।

सोमदत्त जागकर महाबल के यहाँ गया । उसकी पत्नी और पुत्र ने पत्र में लिखे अनुसार विषा का विवाह सोमदत्त से कर दिया । गुणपाल जब आया और उसे जानकारी मिली तो उसने बाह्य रूप में इस विवाह की अनुमोदना कर दी और पुन: सोमदत्त को मारने का विचार करने लगा । अब उसने सोमदत्त को पूजा की सामग्री के साथ एक मन्दिर में भेजा और एक चाण्डाल

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

से कह दिया कि पूजन सामग्री के साथ इधर से जो निकले, उसे मार देना। सोमदत्त जा रहा था कि रास्ते में उसे गुणपाल का पुत्र महाबल मिला । महाबल स्वयं पूजन सामग्री लेकर चला गया और सोमदत्त को उसने वापिस भेज दिया । फलस्वरूप चाण्डाल ने महाबल को मार दिया । इस घटना से गुणपाल बहुत दुःखी हुआ । इस बार उसने अपनी पत्नी को भी षड्यन्त्र में शामिल कर लिया । गुणपाल के कहने से उसकी पत्नी गुणश्री ने विषमिश्रित लड्डू सोमदत्त को देने के लिए बनाए और शौच हेतु बाहर चली गयी । इसी बीच गुणपाल आया । वह भूखा था । भोजन माँगने पर अनजाने में विषा ने लड्डू उसे खाने को दे दिए, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी ।

गुणश्री जब लौटी तो अपने पति की दुःखद मृत्यु से उसे बड़ा पछतावा हुआ । उसने नागरिकों के समक्ष सारी बात प्रकट कर दी और स्वयं भी बचे हुए विषमय दो लड्डू खाकर अपनी जीवन लीला समाप्त की ।

राजा को गुणपाल तथा सोमदत्त का जब वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो सोमदत्त को बुलाया और अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर उसे आधा राज्य दे दिया ।

एक दिन सोमदत्त के घर एक मुनिमहाराज आए । उन्होंने रत्नत्रय का उपदेश दिया, फलस्वरूप सोमदत्त ने दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली । विषा और वसन्तसेना ने भी आर्यिकाव्रत धारण किया । सोमदत्त तप के फलस्वरूप मृत्यु प्राप्त कर सर्वार्थसिद्धि में देव हुए । विषा और वसन्त सेना ने स्वर्ग प्राप्ति की ।

मृगसेन धीवर की यह कथा हरिषेण कृत बृहत्कथा कोष और ब्रह्मनेमिदत्त कृत आराधना कथा कोष में प्राप्त होती है । दयोदय चम्पू की कथा और बृहत्कथा कोष की कथा में बहुत साम्य है । आचार्य ज्ञानसागर ने बृहत्कथा को ही प्रमुख आधार बनाया है और उसमें अपनी काव्यात्मक रमणीय कल्पनाओं का पुट देकर इसे एक सुन्दर साहित्यिक रचना का रूप प्रदान किया है । बृहत्कथा की अपेक्षा इसमें जो कथा वैशिष्ट्य है, उसके विषय में डॉ. किरण टण्डन ने अपने शोध प्रबन्ध 'महाकवि ज्ञानसागर के काव्य एक अध्ययन' में प्रकाश डाला है[१] । आराधना कथा कोश और दयोदय की कथावस्तु में अन्तर है, जो इस प्रकार है -

१. महाकवि ज्ञानसागर के काव्य : एक अध्ययन पृ. ११२-११४

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

आराधना कथा कोष के अनुसार मृगसेन धीवर की स्त्री ने जब उसे घर से बाहर निकाल दिया तो वह घर के बाहर ही एक लकड़े पर पंच नमस्कार मन्त्र का ध्यान करता हुआ सो गया, वहीं उसकी सर्प के काटने से मृत्यु हुई । दयोदय के अनुसार वह एक धर्मशाला में चला गया, वहाँ उसकी मृत्यु हुई । उसकी पत्नी की मृत्यु दयोदय के अनुसार साँप काटने से हुई, आराधना कथाकोष के अनुसार अपने पति के साथ अग्नि में प्रवेश कर उसने अपनी जीवन यात्रा पूरी की ।

दयोदय के अनुसार उज्जयिनी के राजा का नाम वृषभदत्त और रानी का नाम वृषभदत्ता था । अराधना कथा कोष के अनुसार राजा का नाम विश्वम्भर तथा उनकी रानी का नाम विश्वगुण था ।

आराधना कथा कोष के अनुसार गुणपाल की स्त्री का नाम धन श्री तथा पुत्री का नाम सुबन्धु था । दयोदय के अनुसार गुणपाल की स्त्री का नाम गुणश्री और पुत्री का नाम विषा था ।

आराधना कथा कोष के अनुसार मृगसेन अगले जन्म में धनकीर्ति के रूप में उत्पन्न हुआ, वह गुणपाल का पुत्र था । गुणपाल के मित्र श्रीदत्त का पुत्र था और गुणपाल ने उसे अनेक बार मारने का प्रयास किया ।

आराधना कथा कोष के अनुसार पहली बार जब चाण्डाल ने उसे सुरक्षित स्थान पर छोड़ा तो श्रीदत्त की बहिन तथा बहिनोई उसे अपने घर ले आए और पुत्रवत् पालन पोषण किया । आराधना कथा कोष के अनुसार दूसरी बार जब चाण्डाल ने बालक को छोड़ा तब गोविन्द नामक ग्वाले ने उसे प्रप्त किया ।

आराधना कथाकोष के अनुसार वेश्या का नाम अनङ्गसेना था, दयोदय के अनुसार वसन्तसेना था ।

आराधना कथाकोष के अनुसार विषमिस्रित लड्डू श्री दत्त ने खाए, दयोदय ने अनुसार गुणपाल ने खाए ।

आराधना कथाकोष में सुबन्धु का दूसरा नाम श्री मती भी मिलता है। उक्त दोनों कथाओं के परिशीलन से यह निष्कर्ष निकलता है कि नामों में कुछ भेद है, किन्तु मूल कथा प्राय: एक सी है । काव्य की अन्तिम परिणति शान्तरस के रूप में हुई है । शुभ भावों के फलस्वरूप व्यक्ति अगले जन्म

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆
सद्गति को प्राप्त कर आत्मकल्याण की ओर अग्रसर हो सकता है, यह बतलाना यहाँ कवि का ध्येय है । कवि भोग को भी त्यागोन्मुख बनाना चाहते हैं । मृगसेन धीवर पूरी तरह मछलियाँ मारना न छोड़ सका तो जाल में फँसी हुई पहली मछली न पकड़ने का एक व्रत भी उसके लिए वरदान बन गया । अगले जन्म में मुनिराज के दर्शन कर उसने दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली, फलस्वरूप मृत्यु के बाद सर्वार्थसिद्धि में देव हुआ । सर्वार्थसिद्धि से आकर जीव मनुष्य भव प्राप्त कर निश्चित रूप से मोक्षगामी होता है। इस प्रकार कवि ने मोक्षगामिता का सूत्र त्याग को ढूँढा है । भाग्य जिसकी रक्षा करता है, वह व्यक्ति अनेक उपाय किए जाने पर भी नहीं मारा जाता है, अतः अच्छे भाग्य के लिए जीव को सम्यक् पुरुषार्थ करना चाहिए । दूसरे के प्रति बुरी भावना रखने का परिणाम अन्त में दुःखदायी होता है, इस प्रकार अनेक नैतिक और धार्मिक उपदेश इस काव्य से प्रप्त होते हैं।

जयोदय महाकाव्य

अट्ठाईस सर्गों में संस्कृत पद्य में लिखित यह महाकाव्य महाकवि ज्ञानसागर की सबसे प्रौढ़ रचना है । यह भारतवर्ष के आदि चक्रवर्ती सम्राट भरत के प्रधान सेनापति हस्तिनापुर के राजा जयकुमार की कथा को आधार बनाकर लिखा गया एक उत्तम काव्य है । इसकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है -

एक बार हस्तिनापुर के राजा जयकुमार के नगर के उद्यान में मुनिमहाराज का आगमन हुआ । नगरवासी उनके दर्शन के लिए गए । जयकुमार भी अत्यन्त हर्षित हो मुनि महाराज के दर्शनार्थ गया और भक्तिभाव पूर्वक उनकी वन्दना की । मुनि महाराज ने उसे गृहस्थोचित और राजोचित कर्त्तव्यों का उपदेश दिया । उपदेश सुनकर निर्मल अन्तःकरण वाला जयकुमार जब नगर की ओर लौट रहा था तो उसने एक सर्पिणी को भिन्न जातीय सर्प के साथ रमण करते हुए देखा । यह देखकर जयकुमार ने अपने हाथ के कमल से उसे ताड़ित किया । यह देखकर अन्य लोगों ने पत्थर आदि से उस सर्पिणी को मार डाला । सर्पिणी अकाम निर्जरा से व्यन्तरी हुई । दैवयोग से उसका पति व्यन्तर हुआ । उस व्यन्तरी ने अपने पति व्यन्तर से जयकुमार के विरुद्ध वचन कहे, जिससे वह जयकुमार को मारने चला । उस समय जयकुमार

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

अपनी स्त्रियों से सर्पिणी को कुचेष्टाओं के विषय में कह रहे थे । उसे सुनकर उस नागकुमार की स्त्रियों की मायाचारी पर आश्चर्य हुआ । वह जयकुमार के प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित कर चला गया ।

एक बार काशी नरेश की पुत्री सुलोचना के स्वयंवर में जयकुमार को आमन्त्रित किया गया । भरत चक्रवर्ती के पुत्र अर्ककीर्ति आदि राजकुमार तथा राजागण भी वहां उपस्थित हुए । सुलोचना ने स्वयंवर में जयकुमार का वरण किया । अपने सेवक के भड़काने से कुमार अर्ककीर्ति क्रुद्ध हुए, फलस्वरूप संग्राम हुआ । संग्राम में अर्ककीर्ति की पराजय हुई । यह देख काशिनरेश अकम्पन ने अर्ककीर्ति को समझाकर अपनी दूसरी पुत्री अक्षमाला का उसके साथ विवाह कर दिया । जयकुमार ने भी उससे नम्र वचन कहे । अनन्तर अकम्पन के दूतों ने जाकर इस घटना के लिए चक्रवर्ती से क्षमा याचना की । भरत महाराज ने दूतों का सत्कार कर महाराज अकम्पन और जयकुमार के कार्य की प्रशंसा की । जयकुमार सुलोचना का विवाह हुआ ।

जयकुमार अपनी पत्नी सुलोचना के साथ भरत महाराज से मिलने आए। भरत ने अर्ककीर्ति को दोषी ठहराकर जयकुमार का सत्कार किया ।

जयकुमार जब अपने नगर की ओर लौट रहे थे तो मार्ग में गंगानदी में उनके हाथी को एक मत्स्य ने पकड़ लिया । सुलोचना ने पति की प्राणरक्षा हेतु भगवान् की प्रार्थना की । उसके शील के प्रभाव से गङ्गा का जल कम हो गया, मत्सय ने भी गजराज को छोड़ दिया । जयकुमार हस्तिनापुर आकर सुखपूर्वक राज्य करने लगा । एक बार आकाश में एक विमान को देखकर जयकुमार को अपने पूर्वजन्म की प्रिया प्रभावती की याद आयी और वह मूर्छित हो गया । सुलोचना भी अपने पूर्वजन्म के प्रेमी रतिवर की याद कर मूर्छित हो गयी । मूर्छा दूर होने पर उसने जयकुमार को अपने पूर्वजन्म की कथा सुनाई । यथार्थ में रतिवर देव ही जयकुमार के रूप में उत्पन्न हुआ था और प्रभावती सुलोचना के रूप में उत्पन्न हुई थी ।

एक बार एक देवी ने जयकुमार के शील की परीक्षा हेतु उसके सामने नाना प्रकार की श्रृङ्गारिक चेष्टायें की । निष्फल होने पर उसने जयकुमार का हरण करना चाहा । इतने में ही वहाँ सुलोचना आ गयी । उसने उसे

धमकाया । जयकुमार को उसने छोड़ दिया । उसके स्वामी रविप्रभ देव ने जयकुमार की पूजा की ।

एक बार जयकुमार सांसारिक भोगों से विरक्त हो अपने पुत्र अनन्तवीर्य को राज्य देकर सन्यस्त हो गए । उन्हें मनः पर्यय ज्ञान हो गया । अन्त में वे निर्वाण को प्राप्त हुए । सुलोचना भी आर्यिका के व्रत पालन कर अच्युतेन्द्र हुई।

अलङ्कार योजना - काव्य में रमणीयता और वैचित्र्य लाने हेतु महाकवि ज्ञानासागर ने अलङ्कारों का प्रयोग प्रचुरता से किया है । श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, समासोक्ति तथा अनुप्रास उनके प्रिय अलङ्कार है । जयोदय में उन्होंने निम्नलिखित अलङ्कारों का प्रयोग किया है -

	सम ३/८८	क्रियादीपक ६/५९
श्लेष १४/५	अनुप्रेक्षा १४/२८	विशेष ८/२३
समासोक्ति १४/१	उत्प्रेक्षा १४/३४	समुच्चय ७/९७
विरोधाभास १४/२,३	अर्थान्तरन्यास १४/३९	अतिश्योक्ति ५/१८
वक्रोक्ति १४/१०	रूपक १४/४८	निदर्शना ७/७९
तदगुण १४/११	अपहुति १४/४९	स्वभावोक्ति १०/५६
सहयोगिता १४/१२	भ्रान्तिमान् १४/५७	पर्यायोक्त १०/८६
यमक १४/१४	सन्देह १४/६०	काव्यलिङ्ग १२/६४
उपमा १४/१४	सोहक्ति ८/३१	प्रतिषस्तुपमा ८/७४
अन्यथानुपपत्ति १४/२५	उल्लेख १४/७८-७९	अनुमिति १४/६५
असङ्गति १६/२९	संकर १४/९०	यथासंख्य ३/१
हेतु १६/३४	अनुप्रास १६/६१	अनन्वय ३/६३
दीपक १६/४५	दृष्टान्त २४/९९	
	अतिरेक २६/५८	ब्याज स्तुति १/३९

ब्याज स्तुति का उदाहण देखिए -

त्रिवर्गसम्पत्तिमतोऽत्र मन्तुमदक्षशराणां कलनाः क्व सन्तु ।
न वेति वार्थान्निधयो भवन्तु त्वस्येतिवातस्तु लयं व्रजन्तु ॥
जयोदय १/३९

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

वह राजा त्रिवर्ग सम्पत्तिवाला था, इसलिए उसके यहाँ मन्तुमत् अक्षरों अर्थात् अपराधकारी शब्दों की सम्भावना कैसे हो सकती है । उसके यहाँ नौ निधियाँ थीं और अतिवृष्टि आदि ईतियों (उपद्रवों) की बात ही नहीं थी ।

इसका दूसरा अर्थ इस प्रकार से भी है -

वह राजा केवल क-च-ट इन तीन वर्गों को ही जानता था, अतः त से लेकर म तक के अक्षरों का उसके पास सद्भाव कैसे हो सकता था ? फलतः उसके यहाँ निधियाँ भी नहीं थीं । इसलिए उसके अक्षराभ्यास की कभी इतिश्री भी नहीं हो पाती थी ।

यहाँ निन्दा-स्तुत्यात्मक व्याजस्तुति अलंकार है । मूल अर्थ में प्रशंसा और दूसरे अर्थ में निन्दा है ।

श्लेष का एक चमत्कार देखिए -

नानारदाह्लादि तदाननंतु व्यासेन संश्लिष्टमुरः परन्तु ।
बभुव नासा शुककल्पनासा करे रतीशस्य पराशराशा ।।

(जयोदय १/६१)

राजा जयकुमार के मुँह में अनेक सुन्दर दाँत थे और उसका वक्षः स्थल विस्तृत था । उसकी नासिका तोते के समान सुन्दर थी और उसकी कमर में रतीश-कामदेव के शर अर्थात् कमल श्री श्रेष्ठअभिलाषा थी ।

इस पद्य का एक दूसरा भी अर्थ श्लेष से होता है, जो इस प्रकार है -

उस राजा का मुख तो नारद ऋषि के आह्लाद की तरह युक्त था, उसका वक्षः स्थल व्यास ऋषि से श्लाघ्य था और उसकी नासिका शुक्रदेव मुनि की कल्पना की तरह थी तो उस रतीश के हाथ में पराशर ऋषि की आशा (शोभा) थी ।

निम्नलिखित पद्य में विरोधाभास दृष्टव्य हैं -

अनङ्गरम्योऽपि सदङ्गभावादभूत् समुद्रोऽप्यजडस्वभावात् ।
न गोत्रभित्किन्तु सदा पवित्रः स्वेचेष्टितेनेत्थमसौ विचित्रः ।।

जयोदय १/४१

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

वह राजा उत्तम अंगों वाला होने से अनंग (कामदेव) के समान सुन्दर था। जड़स्वभाव (मन्दबुद्धि) न होने से मुद्राओं से भी युक्त था। वह अपने गोत्र को मलिन करने वाला नहीं, किन्तु सदा पवित्र उज्जवल चरित्र वाला था। इस प्रकार वह अपनी चेष्टाओं से विचित्र प्रकार का था।

इस पद्य में विरोधाभास है, क्योंकि जो अच्छे अङ्गो वाला होता है, वह अनङ्गरम्य अर्थात् अंग की रमणीयता से रहित नहीं हो सकता। इसी प्रकार जो अजल स्वभाव हो, वह समुद्र नहीं हो सकता, जो पर्वत का तोड़ने वाला न हो, वह पवित्र (वज्रधारी) नहीं हो सकता।

मुहावरों का प्रयोग - काव्य में सौन्दर्य का आधान करने के लिए कवि ने स्थान स्थान पर मुहावरों का प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

श्रीचतुष्पथ के उत्कलिताय हिताय कस्यचित् चित् न व्रजति ॥
जयोदय ४/७

अर्थात् चौहारे पर धरे हुए रत्न को लेने के लिए किसका मन नहीं चाहता?

गोस्तृष्णानि हि समादरणेऽत्ति (जयोदय ४/२१)

अर्थात् गाय आदर होने पर ही तृण खाती है।

इसी को हिन्दी में इस प्रकार कहते हैं - बिना आदर के गाय भी घास नहीं खाती।

काशिकानृपति चित्त कलापी सम्मदेन सहसा समवापि
(जयोदय ५/५५)

महाराज अकम्पन का चित्तमयूर एकाएक प्रसन्न हो उठा। लोक व्यवहार में भी मन मयूर नाच उठने का मुहावरे के रूप में प्रयोग होता है।

दीपतुत्थकथां समञ्चसि (जयोदय ७/३९)

अर्थात् दीपक से काजल वाली कहावत चरितार्थ कर रहे हैं।

जयोदय में पाण्डित्य - महाकवि ज्ञानसागर का जयोदय काव्य सुकुमार मति बालकों के लिए न होकर प्रौढ़मति पण्डितों के लिए है। यह मिश्री का स्वाद है, जिसे ग्रहण करते समय चूसने में धैर्य की आवश्यकता है, अन्यथा दाँत भी टूट सकते हैं। उनके काव्य का अध्ययन करते समय उनका पाण्डित्य

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

झलकता है । वे अनेक विषयों के पण्डित थे । जयोदय में समीक्षा शास्त्र[1], श्रुतिपुत्री[2] (स्मृति या उपनिषद्) कुम्भकविद्या[3], क्षणिकत्व[4] (बौद्धमत) पल्लव[5] (व्याकरण शास्त्र), सत्रयी[6] (त्रयीविद्या-ऋक, युजुःसाम) शून्यवाद[7], कामतन्त्र[8] (कामशास्त्र), अनेकान्त[9], चरणश्रुत[10] (चरणानुयोग), छन्दशास्त्र[11], उपासकाध्ययन[12], करणश्रुत[13], द्रव्यानुयोग[14], शब्दशास्त्र[15], अलङ्कार शास्त्र१६, निमित्त निगम[17] (ज्योतिष शास्त्र), अर्थशास्त्र[18], गीतिरीति[19] (सङ्गीत शास्त्र) मन्त्रतन्त्र[20] (मन्त्र शास्त्र), वास्तुशास्त्र[21], तानवश्रुत[22] (आयुर्वेद), वार्ता[23], नियमानुसार आजीविका विधान), दण्डनीति[24], आदि विधाओं का कथन हुआ है इनमें से अधिकांश के विषय में जयोदय के द्वितीय सर्ग में कथन हुआ है कि इन्हें गृहस्थों को पढ़ना चाहिए । महाकवि ज्ञानसागर सामान्य गृहस्थों को भी पण्डित बना देना चाहते हैं । उनके काव्य में अनेक आचार्यों, विद्वानों और मनीषियों के नाम आए हैं । अनेकों के ग्रन्थों का उन्होंने उल्लेख किया है । राजनीति के विषय में उनका कथन है कि प्रभुशक्ति, बलशक्ति और मन्त्रशक्ति से सम्पन्न राजा साम, दाम, भेद, दण्डरूप उपायों द्वारा परचक्र के भय को दूर करता हुआ पृथ्वी का सम्यक् शासन कर सकता है[25] । कवि अपने पूर्ववर्ती कवियों की काव्यरचनाओं से प्रभावित हुआ है । उस पर सर्वाधिक प्रभाव श्री हर्षकृत नैषधीय चरितम् का पड़ा है । नैषध के अनेक पद्य या उसके अंश कहीं भावरूप में और कहीं शब्द रूप में कवि ने आत्मसात् किए हैं । अनेकों के साथ अपनी निजी कल्पनायें भी जोड़ी हैं। नैषधीयचरितम् के प्रत्येक सर्ग के अन्त में सर्गनिर्देश की भिन्नता के साथ निम्नलिखित पद्य आया है -

श्रीहर्षं कविराज राजिमुकुटालङ्कार हीरस्सुतं ।
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियवयं मामल्ल देवी च यम् ।

---

१. जगद्धत करी सुसमीक्षण ५/४० २. जयोदय ५/४१ ३. वही ५/४२
४. वही ५/४२ ५. वही ५/४२ ६. वही ५/४३
७. वही ५/४३ ८. वही ५/४३ ९. वही ५/४४
१०. वही ५/४६ ११. वही ५/५३ १२. वही २/४५
१३. वही २/४७ १४. वही २/४९ १५. वही २/५२
१६. वही २/५४ १७. वही २/५८ १८. वही २/५९
१९. वही २/६० २०. वही २/६१ २१. वही २/६२
२२. वही २/५६ २३ वही २/१२० २४. वही २/१२०
२५. वही २/१२०

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

तार्तीयीकतया मितोऽयमगमत् तस्य प्रबन्धे महा काव्ये चारुणि नैषधीयचरिते सर्गो निसर्गोज्ज्वलः ॥ नैच. ३/१३६

इसी के अनुकरण पर कवि ज्ञानसागर ने प्रत्येक सर्ग के अन्त में इस प्रकार का पद्य जोड़ दिया है, केवल सर्ग की संख्या बदल ही है -

स श्रीमान् सुषेवे चतुर्भुजवणिक् शान्तेः कुमाराह्वयं,
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरीदेवी च यं धीचयम् ।
नव्यां पद्धतिमुद्धरत्सुकृतिभिः काव्यंमतं तत्कृतं,
सर्गस्य द्वितयेतरस्य चरमां सीमानमेतद् गतं ॥
जयोदय – तृतीय सर्गका अन्तिम पद्य

नैषध ने प्रारम्भ में कहा है -

निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथां
तथाद्रियन्ते न बुधस्सुधामपि ।
नलः सितच्छत्रित कीर्तिमण्डलः
स राशि रासीन्महसः महाज्ज्वलः ।नैषधीचरितम् १/१

जिस पृथ्वी के पालक की कथा का स्वाद लेकर देवता अमृत का भी वैसा आदर नहीं करते हैं, जिसने कीर्ति के मण्डल को धवल छत्र बनाया है, उत्सवों से देदीप्यमान वह नल तेजों की राशि था ।

जयोदय महाकाव्य में भी कहा है -

कथाप्यथामुष्य यदि श्रुतारात्तथा वृथा सा ऽऽर्य सुधासुधारा॥
जयोदय १/३

हे सज्जन! इस जयकुमार राजा की कथा यदि एक बार भी सुन ली जाय तो उसके सामने अमृत की अभिलाषा भी व्यर्थ हो जायगी ।

इसी प्रकार जयोदय के निम्नलिखित पद्यों पर नैषध का प्रभाव देखा जा सकता है - सर्ग १ पद्य सं. १३,११,७२

निम्नलिखित पंक्ति तो नैषध में इसी प्रकार मिलती है -

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

अमित्रजिन्मित्रजिदौजसा भृशं विचारहग् चारहगप्यवर्तत ॥ जयोदय २३/३

राजा जयकुमार अपने तेज से सूर्य को जीतने वाले होकर भी सूर्य को जीतने वाले नहीं थे (परीहार पक्ष में अमित्रजित् शत्रुओं को जीतने वाले थे) चारहक्-गुप्तचर रुप दृष्टि से सहित होकर भी विचारहक चार रुप दृष्टि से रहित थे) (परिहार पक्ष में विचारहक् विचार रूप दृष्टि सहित थे) ।

यही बात नैषध में नल के लिए कही गयी है ।

जयोदयकार की धार्मिक विचार धारा - जयोदय के साहित्य वैभव के प्रति प्रायः समीक्षक आकृष्ट हुए हैं । उन्होंने कवि के काव्यवैभव पर स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे हैं, किन्तु कवि की धार्मिक विचारधारा का मन्थन अब भी शेष है । कवि को व्यवहार नीति और आर्षनीति दोनों का ध्यान है । उनके अनुसार संसार के व्यवहार का नाम ही नीति है । वही निश्चय से युक्त होने पर आर्षरीति कहलाती है । दोनों की परस्पर अपेक्षा रखना ही सुन्दर परिणाम उपस्थित करता है[१] । कवि को आर्षरीति का अच्छा ज्ञान था । पाक्षिक और दार्शनिक श्रावक का भेद करते हुए वे कहते हैं कि पाक्षिक श्रावक के कार्य सदोष होते हैं, किन्तु दार्शनिक उन्हीं को निर्दोष रीति से करता है । जैसे बालक दूसरों के हाथ के सहारे लिखता है, किन्तु कुमार अकेला ही लिखा करता है[२] । कवि मूर्तिपूजा का समर्थक है । उसके अनुसार-सूक्तियों द्वारा जिन भगवान् के प्रतिबिम्ब में जो उनके गुणों का आरोपण किया जाता है, वह सर्वथा निर्दोष है । क्या युद्ध में मन्त्रित कर फेके गए उड़द आदि शत्रु के लिए मरण, विक्षेप आदि उपद्रव करने वाले नहीं होते[३] । प्रातः काल के समय गृहस्थ की मन और इन्द्रियाँ प्रसन्न रहती हैं, अतः उस समय प्रधानतया सब अनर्थों का नाश करने वाला देव पूजन करना चाहिए, ताकि सारा दिन प्रसन्नता से बीते । प्रसिद्ध है कि दिन के प्रारम्भ में जैसा शुभ या अशुभ कर्म किया जाता है, वैसा ही सारा दिन बीतता है[४] । गृहस्थों को सर्वप्रथम भगवान् अरहंत देव की पूजन करना चाहिए, क्योंकि वे ही भगवान् मङ्गलों में उत्तम और शरणागत वसत्ल हैं । वे देवताओं से भी श्रेष्ठ

---

१ जयोदय २/६   २ वही २/१३   ३ वही २/३२   ४ वही २/२३

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

देव हैं । उनके समान शरीरधारियों का हित करने वाला कोई दूसरा नहीं है[१] । वर्तमान में हम देखते हैं कि जैसे धनवानों द्वारा उतारकर फेके गये भी वस्त्रादि निर्धनों के लिए अलंकार के समान आदरणीय हो जाते हैं, वैसे ही भगवान् अरहंत देव के चरणों की रज हम जैसों के भव रोगों को दूर करती है । उनके स्नान का जल भले भले लोगों के मस्तकों को पवित्र बनाता है[२] । वे पूजा की भिन्न-भिन्न पद्धतियों में दोष नहीं मानते । जैसे नर्तकी मूल सूत्र रस्सी का आश्रय लेकर तरह-तरह नाचती है तो उसका नाचना दोषयुक्त नहीं माना जाता है[३] ।

कवि के लिए निश्चय और व्यवहार दो आँखे हैं, ये सत्य रूपी कनीनिका को लिए हुए हैं[४] । जयोदय का नायक अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है, यही कविका भी अभिप्रेत हैं ।

जयोदय का सूक्ति वैभव - जयोदय में स्थान-स्थान पर सुन्दर सूक्तियों का प्रयोग हुआ है । ये सूक्तियाँ जीवन और जगत के लिए उपयोगी हैं । कुछ सूक्तियाँ देखिए-

सर्वम् एवं सकलस्य औषधंन भवति ॥ जयोदय २/१७

सभी औषधियाँ सबके लिए उपयोगी नहीं होती ।

को नु नाश्रयति वा स्वेता हितम् ॥ जयोदय २/१८

अपना हित कौन नहीं चाहता ।

कर्दमे हि गृहिणोऽखिलाञ्चलाः ॥ जयोदय २/१९

गृहस्थों के चारों पल्ले कीचड़ में है ।

गेहिने हि जगतोऽनपायिनी भक्तिरेव खलु मुक्तिदायिनी ॥ जयोदय २/३८

गृहस्थ के लिए निर्दोष रूप से की गयी भक्ति ही मुक्ति देने वाली हुआ करती है ।

शाणतो हि कृतकार्य आयुधी ॥ जयोदय २/४१

---

१ वही २/२७ २ वही २/२८ ३ वही २/२९ ४ वही ५/४९

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

आयुध का धारक मनुष्य अपने शस्त्र को शाण पर चढ़ाकर ही कार्यकुशल हो पाता है ।

प्रसङ्गजनितार्थंद पद्म ।। जयोदय २/४२

पद प्रसङ्गोपात्त अर्थ के ही प्रतिपादक हुआ करते हैं ।

इस प्रकार अनेक सूक्तियों का जयोदय भण्डार है ।

जयोदय की महत्ता - जयोदय रस, भाव, अलङ्कार, शब्द योजना, अर्थ गाम्भीर्य, प्रकृति चित्रण, मानवता का निदर्शन तथा सांस्कृतिक चित्रण आदि की दृष्टि से एक सफल महाकाव्य है । अकेले इस काव्य का सम्यक् अध्ययन कर ही संस्कृत काव्य के अध्ययन में ही प्रवीणता प्राप्त कर सकता है । अकेला यह काव्य कवि की कीर्तिश्री को अक्षुण्ण रखने में अलं है ।

वीरोदय नाम की सार्थकता - वीरोदय महाकाव्य बीसवीं सदी के महान् आचार्य श्री १०८ ज्ञानसागर जी महाराज की संस्कृत काव्यमयी सुप्रसिद्ध रचना है। वीरोदय शब्द वीर और उदय दो शब्दों से मिलकर बना है। इसमें 'वीर' अर्थात् भगवान् महावीर के उदय सम्बन्धी वृत्त वर्णित है। यास्काचार्य कृत निरुक्त के अनुसार वीर शब्द विउपसर्ग पूर्वक 'ईर गतौ कम्पने च' (अदादि) धातु से बना है । उसका अर्थ शत्रुओं को भगाने वाला या कँपाने वाला है। अथवा गत्यर्थक वी - धातु से वीर शब्द बना है। अथवा ('शूर वीर विक्रान्तौ', चुरादि गण) वीर धातु से बना है[१] । नियमसार तात्पर्यवृत्ति में कहा है- 'वीरो विक्रान्तः वीरयते शूरयते विक्रामति कर्मारातीन् विजयत इति वीरः- श्रीवर्द्धमान- सन्मतिनाथ महतिमहावीराभिधानैः सनाथः परमेश्वरो महादेवाधिदेवः पश्चिम तीर्थनाथः वीर अर्थात् विक्रान्त (पराक्रमी) वीरता प्रकट करे, शौर्य प्रकट करे, विक्रम (पराक्रम) दर्शाये, कर्म शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे, वह वीर है। ऐसे वीर श्री वर्द्धमान श्री सन्मतिनाथ, महति, महावीर आदि नामों से युक्त परमेश्वर, महादेवाधिदेव अन्तिम तीर्थंकर हैं[२] । धनञ्जय नाममाला

---

१. वीरो वीरयत्यमित्रान्। वेतेवस्यात् गतिकर्मणः । वीरयतेर्वा ।
निरुक्त प्रथम अध्याय, तृतीय पाद पृ. ६४

२. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश - भाग ३ पृ. ५७६

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

के अमर कीर्ति भाष्य में कहा गया है- विशिष्टाम इन्द्राद्यसम्भाविनीम् ईम् अन्तरङ्गं समवसरणानन्त चतुष्टय लक्षणां लक्ष्मीं रात्यादत्ते इति वीरः । वीर इति नाम कस्माज्जातम् । जन्माभिषेके चालघुशरीर दर्शनादाशङ्कितवृत्तेरिन्द्रस्य समर्थ्यख्यापनार्थं पादाङ्गुष्ठेन मेरुचालना दिन्द्रेण वीर नाम कृतम। विशिष्ट' - इन्द्रादि में असम्भव अन्तरङ्ग, समवसरण अनन्त चतुष्टय लक्षण लक्ष्मी को जो ग्रहण करते हैं, वे वीर हैं. वीर यह नाम कैसे हुआ? जन्माभिषेक के समय छोटा शरीर देखकर आशङ्कित हुए इन्द्र को सामर्थ्य दिखलाने के लिए पैर के अँगूठे से मेरु को कँपाने के कारण इन्द्र ने 'वीर' यह नाम रखा[१] ।

इस विषय में आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने वीरोदय महाकाव्य में कहा है - जो मनुष्य लोहे से बनी खड्ग से नहीं मारा जा सकता वह वज्र से निश्चयत: मारा जाता है। जो वज्र से भी नहीं मारा जा सकता, वह दैव से अवश्य मारा जाता है, किन्तु जो महापुरुष दैव को भी मारकर विजय प्राप्त करता है, उसका संहार करने वाला इस संसार में कौन है? वह वीरों का वीर महावीर ही इस संसार में सर्वोत्तम विजेता है और वह सदा विजयशील बना रहे[२]।

वीरोदयः एक महाकाव्य - महाकाव्य की सुव्यवस्थित परिभाषा १५ वीं. शताब्दी में विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्य दर्पण में दी है । तद्नुसार पद्यबन्ध के प्रकारों में जो सर्गबन्धात्मक काव्य प्रकार है, वह महाकाव्य कहलाता है। इस सर्गबन्ध रुप महाकाव्य में एक ही नायक का चरित चित्रित किया जाता है. यह नायक कोई देव विशेष या प्रख्यात वंश का राजा होता है। यह धीरोदात्त नायक के गुणों से युक्त होता है। किसी-किसी महाकाव्य में एक राजवंश में उत्पन्न अनेक कुलीन राजाओं की भी चरित्र चर्चा दिखाई देती है। श्रृंगार, वीर और शान्त रसों में से कोई एक रस प्रधान होता है।

---

१. नाममाला - भाष्य ११५

१. खड्गेनायसनिर्मितेन न हतो वग्रेण वै हत्यते।
तस्मान्निर्व्रजते नराय च विपद्दैवेन तं तत्यते ।
दैवं किन्तु निहत्य यो विजयते तस्यात्र संहारकः
कः स्यादित्यनुशासनाद्विजयतां वीरेषु वीरः सकः ॥ वीरदोय काव्य १६/३०

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

इन तीनों रसों में से जो रस भी प्रधान रखा जाय, उसकी अपेक्षा अन्य सभी रस अप्रधान रुप से अभिव्यक्त किये जा सकते हैं। नाटक की सभी सन्धियाँ, महाकाव्य में आवश्यक मानी गयी है। कोई भी ऐतिहासिक अथवा किसी महापुरुष के जीवन से सम्बद्ध कोई लोकप्रिय वृत्त यहाँ वर्णित होता है। महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रुप पुरुषार्थ चतुष्टय का काव्यात्मक निरुपण होता है, किन्तु उत्कृष्ट फल के रुप में सर्वतोभद्र निबन्ध युक्ति-युक्त माना जाता है। महाकाव्य का आरम्भ मङ्गलात्मक होता है। यह मङ्गल नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक या वस्तुनिर्देशात्मक होता है। किसी किसी महाकाव्य में खलनिन्दा और सज्जन प्रशंसा भी उपनिबद्ध होती है, इसमें न बहुत छोटे, न बहुत बड़े आठ से अधिक सर्ग होते हैं। प्रत्येक सर्ग में एक छन्द होता है, किन्तु (सर्ग का) अन्तिम पद्य भिन्न छन्द का होता है। कहीं कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं । सर्ग के अन्त में अगली कथा की सचना होनी चाहिए । इसमें सन्ध्या, सूर्य, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रात: काल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ संग्राम, विवाह, यात्रा, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासम्भव साङ्गोपाङ्ग वर्णन होना चाहिए। इसका नाम कवि के नाम से या चरित्र के नाम से अथवा चरित्र नायक के नाम से होना चाहिए। सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नाम लिखा जाता है। सन्धियों के अङ्ग यहाँ यथासम्भव रखने चाहिए। जलक्रीडा मधुपानादि साङ्गोपाङ्ग होने चाहिए[१]।

महाकाव्य के उपर्युक्त लक्षण न्यूनाधिक रुप में वीरोदय काव्य में घटित होते हैं। इसे सर्गों में विभाजित किया गया है। काव्य के प्रारम्भ में श्री ऋषभ जिनेन्द्र, चन्द्रप्रभु, पार्श्वनाथ एवं वीर प्रभु को नमस्कार किया गया है। इसके बाद विघ्नलोपी गुरुजनों का सामान्य रुप से स्मरण कर कवि ने अपनी लघुता व्यक्त करते हुए कहा है कि श्री वीर भगवान् के जिस उदयरुप माहात्म्य के वर्णन करने के लिए श्री गणधर देव भी समर्थ नहीं हैं, ऐसे वीरोदय के वर्णन करने के लिए मैं जल प्रतिबिम्बित चन्द्रमण्डल को उठाने की इच्छा करने वाले बालक के समान बालभाव को धारण कर रहा हूँ[२] । इस प्रकार

१.विश्वनाथ: साहित्यदर्पण ३१५-३२४   २. वीरोदय काव्य १/७

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

कहकर कवि ने वस्तुनिर्देश किया है। इसकी रचना तीर्थङ्कर भगवान महावीर जैसे महान् व्यक्तित्व की कथा के आधार पर हुई है। इसे कहकर कवि अपने को निर्मल बनाना चाहता है, उसके अनुसार जिनके चरणों का चिन्तन करने से प्राणियों का मन पापों से रहित होकर निर्मलता को प्राप्त हो जाता है, उन्हीं वीर भगवान् के एकमात्र चरित्र का चित्रण करने में समर्थ उसकी वाणी सुवर्ण भाव को क्यों नहीं प्राप्त होगी[१] ? अर्थात् वीर भगवान के चरित्र का वर्णन करने के लिए उसकी वाणी भी उत्तम वर्ण, पद, वाक्य रुप से अवश्य ही परिणत होगी ।

वीरोदय शान्तरस प्रधान काव्य है आवश्यकतानुसार इसमें श्रृंगार[२], अदभुत्[३] और वात्सल्य[४] इस का भी समावेश हुआ है। तृतीय सर्ग में प्रियकारिणी रानी का नखशिख वर्णन करने में कवि ने अपने श्रृङ्गार रस के वर्णन कौशल को अभिव्यक्त किया है। उदाहरणार्थ दो पद्य प्रस्तुत हैं-

प्रवालता मूर्ध्न्यधरे करे च मुखेऽब्जताऽस्याश्चरणे गले च।
सुवृत्तता जानुयुगे चरित्रे रसालताऽभूत्कुचयोःकटित्रे।
पूर्व निनिमयि विधुं विशेष यलाद्विधिस्तन्मुखमेवमेषः।
कुर्वंस्तदुल्लेखकरीं चकार स तत्र लेखामिति तामुदारः ॥
वीरोदय ३/२८-२९

इस रानी (प्रिय कारिणी) के शिर पर तो प्रबालता (केशों की सघनता) थी, ओठों पर मूँगे के समान लालिमा थी और हाथ में नवपल्लव की समता थी। रानी के मुख में अब्जता (चन्द्रतुल्यता) थी, चरणों में कमलसदृश कोमलता थी और गले में शंख सदृशता थी। दोनों जंघाओं में सुवृत्तता थी और चरित्र में सदाचारिता थी। दोनों स्तनों में रसालता (आम्रफल तुल्यता) थी और कटित्र (अधोवस्त्र) पर रसालता (करधनी) शोभित होती थी ।

विधाता ने पहले चन्द्र को बनाकर पीछे बड़े प्रयत्न से इस रानी के मुख को बनाया । इसीलिए मानो उदार विधाता ने चन्द्रबिम्ब की व्यर्थता प्रकट करने के लिए उस पर रेखा खींच दी है। जिसे कि लोग कलङ्क कहते हैं।

१. वही १/९ २. वही ५/३७ ३. वही ६/१० ४.वही८/७,४६

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

वीरोदय का नवम एवं दशम सर्ग शान्त भावों से भरा हुआ है। संसार की कारुणिक स्थिति के विषय में भगवान विचार करते हैं -

संसार की समस्त वस्तुयें विपरीत रुप धारण किए हुए दिख रही हैं, जिसे लोग नगर कहते हैं, वह तो सगर अर्थात विषयुक्त है, जिसे लोग वन कहते हैं, उसमें अवन तत्व है अर्थात् उसमें सभी प्राणियों की सुरक्षा है। इसलिए नगर को त्याग कर मेरा मन विषम (भीषण) वन में रहने को हो रहा है[1]।

वीरोदय में पंच सन्धियाँ विद्यमान हैं। प्रथम सर्ग में मुखसन्धि, छठे सर्ग में प्रतिमुख सन्धि, विवाह के विरोध में गर्भ सन्धि, एकादश, द्वादश तथा त्रयोदश सर्गों में विमर्श सन्धि एवं १२ वें सर्ग में मोक्षलाभ के प्रसङ्ग में निर्वहण सन्धि है। यहाँ पुरुषार्थ चतुष्टय में मोक्षलाभ रुप उद्देश्य की प्राप्ति होती है।

वीरोदय के प्रथम सर्ग के दसवें पद्य से २१ वें पद्य तक सज्जनों की प्रशंसा और दुर्जनों की निन्दा की गयी है। बारहवें पद्य में कहा गया है -

सतामहो सा सहजेन शुद्धः परोपकारे निरतैव बुद्धिः।
उपद्रुतोऽप्येष तरु रसालं फलं श्रणत्यङ्गभृते त्रिकालम ॥

वीरोदय १/१२

अर्थात् अहो ! सज्जनों की चित्तशुद्धि पर आश्चर्य है कि उनकी बुद्धि दूसरों पर उपकार करने में सहज स्वभाव से ही निरत रहती है। देखो - लोगों के द्वारा (पत्थर आदि मारकर) उपद्रव को प्राप्त किया गया भी वृक्ष सदा ही उन्हें रसाल-फल प्रदान करता है।

१९वें पद्य में दुर्जन के विषय में कहा है -

अनेक धान्येषु विपत्तिकारी विलोक्यते निष्कपटस्य चारिः।
छिद्रं निरुप्य स्थिति मादधाति स भाति आखोः पिशुनः सजातिः ॥

वीरोदय १/१९

दुर्जन मनुष्य चूहे के समान होते हैं। जिस प्रकार मूषक (चूहा) नाना

---

१. सगरं नगरं त्यक्त्वा विषमेऽपि समेरसः ।
वनेऽप्यवनतत्वेन सकलं विकलं यतः ॥ वीरदोय १०/१९

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

जाति की धान्यों का विनाश करने वाला है, निष्क अर्थात् बहुमूल्य पटों का अरि है, उन्हें काट डालता है और छिद्र (बिल) देखकर उसमें अपनी स्थिति को कायम रखता है। ठीक इसी प्रकार पिशुन पुरुष भी मूषक के सजातीय प्रतीत होते हैं, क्योंकि पिशुन पुरुष भी नाना प्रकार के अन्य सर्वसाधारण जनों के लिए विपत्ति कारक है, निष्कपट जनों के शत्रु हैं और लोगों के छिद्रों (दोषों) को देखकर अपनी स्थिति को दृढ बनाते हैं।

वीरोदय में २२ सर्ग हैं । इसमें ५०३ उपजाति, १७८ अनुष्टुप, ४२ वियोगिनी, १ रथोद्धता, १२ मात्रासमक, ९ द्रुतविलम्बित, २५ वंशस्थ, २६ आर्या, ४० वसन्ततिलका, ३४ उपेन्द्रवज्रा, ३८ शार्दूलविक्रीडित, ५४ इन्द्रवज्रा, १३ भुजंगप्रयात, ८ उपजाति, २ मालिनी, १ इन्द्रवंशा, १ शिखरिणी तथा १ मन्द्राकान्ता छन्द है । उपजाति छन्द को प्रथम स्थान प्राप्त है । कुल १८ प्रकार के छन्द प्रयुक्त किए गए हैं[१] । प्रत्येक सर्ग के अन्त में सर्ग की वर्णनीय कथा का कथन किया गया है । वीरोदय में हिमालय[२], विजयार्द्ध[३] और सुमेरु[४] तीन पर्वतों का वर्णन हैं । कवि ने चतुर्थ सर्ग में वर्षा, षष्ठ में बसन्त, द्वादश में ग्रीष्म, नवम में शीत एवं इक्कीसवें सर्ग में शरद् ऋतु का मनोहारी वर्णन किया है । उदाहरणर्थ ग्रीष्म वर्णन के कुछ रुप देखिए-

वोढ़ा नवोढामिव भूमिजातश्छायामुपान्तान्न जहात्यथातः ।
अनारतं वान्ति वियोगिनीनां श्वासा इवोष्णाः श्वसना जनीनाम् ॥
१२/३ (वीरोदय)

जैसे कोई नवीन विवाहित पुरुष नवोढ़ा स्त्री को अपने पास से दूर नहीं होने देता है, उसी प्रकार इस ग्रीष्मकाल में भूमि से उत्पन्न हुआ वृक्ष भी छाया को अपने पास से नहीं छोड़ता है । तथा इस समय वियोगिनी स्त्रियों के उष्ण श्वास्ने के समान उष्ण वायु भी निरन्तर चल रही है ।

मितम्पचेषूत किलाध्वगेषु तृष्णाभिवृद्धिं समुपैत्यनेन ।
हरेः शयानस्य मृणालबुद्ध्या कर्षन्ति पुच्छं करिणः करेण ॥
१२/४ (वीरोदय)

---

१ छन्दों के विस्तृत वर्णन हेतु देखिए - महाकवि ज्ञानसागर के काव्य : एक अध्ययन (लेखिका - डॉ. किरण टण्डन) - अष्टम अध्याय
2 वीरोदय २/७ ३ वही २/८ ४ वीरोदय २/२

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

इस ग्रीष्मकाल के प्रभाव से पथिक जनों में कृपण जनों के समान ही तृष्णा (प्यास और धनाभिलाषा) और भी वृद्धि को प्राप्त हो जाती है। इस समय ग्रीष्म से विह्वल हुए हाथी अपनी सूंड से सोते हुए सांप को मृणाल की बुद्धि से खींचने लगते हैं ।

वीरोदय के द्वितीय सर्ग में विदेह देश और कुण्डपुर नगर का काव्यात्मक वर्णन किया गया है । प्रसङ्गानुसार इसमें रात्रि, परिखा, सौध, जिनालय, नगरद्वार, समुद्र, द्वीप, नागरिक, स्त्रियों, वियोग तथा कोट का वर्णन किया गया है । अन्यत्र नदी[१], सरोवर[२], दिवस[३], यात्रा[४], आदि के वर्णन प्राप्त होते हैं । इन सब लक्षणों के आधार पर सिद्ध होता है कि वीरोदय एक महाकाव्य है।

अलङ्कार योजना - वीरोदय काव्य में विरोधाभास, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिङ्ग, श्लेष, दृष्टान्त, उपमा और रुपक आदि अनेक अलङ्कारों का प्रयोग किया गया है । निदर्शनार्थ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

विरोधाभास - जहां विरोध जैसा प्रतिभासित तो हो, किन्तु यथार्थ में विरोध न हो, वहाँ विरोधाभास अलङ्कार होता है । जैसे -

नरपो वृषभावमाप्तवान् महिषीयं पुनरेतकस्य वा ।
अनयोरविकारिणी क्रिया समभूत्साद्युसदामहो प्रिया ॥
(वीरोदय) ३/३६

यह सिद्धार्थ राजा वृषभाव (बैलपने) को प्राप्त हुआ और इसकी यह रानी महिषी (भैंस) हुई । पर यहतो विरुद्ध है कि बैल की स्त्री भैंस हो। अतः परिहार यह है कि राजा तो परम धार्मिक था और प्रियकारिणी उसकी पट्टरानी बनी । इन दोनों राजा रानी की क्रिया अवि (भेड़) को उत्पन्न करने वाली हो, यह कैसे सम्भव है ? इसका परिहार यह है कि उनकी मनोविनोद आदि सभी क्रियायें विकार रहित थीं । यह रानी मानुषी होकर भी देवों की प्रिया थी, पर यह कैसे सम्भव है ? इसका परिहार यह है कि वह अपने गुणों द्वारा देवों को अत्यन्त प्यारी थी ।

---

१ वही ३/७ - ९   २ वही १२/८-१०
३ वही १२/२०   ४ वही ७/६-१२

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

बभूव कस्यैव बलेन युक्तश्च नाऽधुनासौ कवले नियुक्तः ।
सुरक्षणोऽसावसुरक्षणोऽपि जनैरमानीति वधैकलोपी ॥
(वीरोदय) १२/४८

भगवान उस समय कवल अर्थात् आत्मा के बल से तो युक्त हुए, किन्तु कवल अर्थात् अन्न के ग्रास से संयुक्त नहीं हुए, अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् भगवान् कवलाहार से रहित हो गए, फिर भी वे निर्बल नहीं हुए प्रत्युत् आत्मिक अनन्त बल से युक्त हो गए । वे भगवान् सुरक्षण होते हुए भी असुरक्षण थे । यह विरोध है कि जो सुरों का क्षण (उत्सव-हर्ष) करने वाला हो, वह असुरों का हर्षवर्द्धक कैसे हो सकता है ? इसका परिहार यह है कि वे देवों के हर्ष वर्द्धक होते हुए भी असु-धारी-प्राणी मात्र के भी पूर्ण रक्षक एवं हर्ष-वर्द्धक हुए । इसीलिए लोगों ने उन्हें वध (हिंसा) मात्र का लोप करने वाला और पूर्ण अहिंसक माना ।

उत्प्रेक्षा - उपमेय की उपमान के रूप में सम्भावना करने को उत्प्रेक्षा अलङ्कार कहते हैं । ऐसा ज्ञात होता है कि महाकवि ज्ञानसागर को उत्प्रेक्षा अलङ्कार अधिक प्रिय था । वीरोदय काव्य में अनेक स्थान पर उत्प्रेक्षा के प्रयोग प्राप्त होते हैं । जैसे -

रसैर्जगत्प्लावयितुं क्षेणन सूत्कण्ठितोऽयं मुदिरस्वनेन ।
तनोति नृत्यं मृदु मञ्जुलापी मृदङ्गनिःस्वानजिताकलापी ॥
(वीरोदय) ४/९

रसों (जलों) से जगत् को एक क्षण में आप्लावित करने के लिए ही मानो मृदङ्ग की ध्वनि को जीतने वाले, मेघों के गर्जन से अति उत्कण्ठित और मृदु मञ्जुल शब्द करने वाला यह कलापी (मयूर) नृत्य किया करता है ।

यहाँ वर्षाकाल की नाटकघर के रूप में सम्भावना की गई है, क्योंकि इस समय मेघों का गर्जन तो मृदङ्गों की ध्वनि को ग्रहण कर लेता है और उसे सुनकर प्रसन्न हो मयूरगण नृत्य करते हुए सरस सङ्गीत रूप मिष्ट बोली का विस्तार करते हैं । वर्षा की एक स्त्री के रूप में सम्भावना देखिए -

पयोधरोत्तानतया मुदेवाक् यस्या भृशं दीपितकामदेवा ।
नीलाम्बरा प्रावृढियं च रामा रसौधदात्री सुमनोभिरामा ॥
(वीरोदय) ४/१०

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

यह वर्षा ऋतु पयोधरों (मेघों और स्तनों) की उत्तानता अर्थात् उन्नति से, मेघगर्जना से तथा आनन्दवर्द्धक वाणी से लोगों में कामदेव को अत्यन्त प्रदीप्त करने वाली, नीलवस्त्रधारिणी, रस के पूर को बढ़ा देने वाली और सुमनों (पुष्पों तथा उत्तम मन) से अभिराम (सुन्दरी) रामा (स्त्री) के समान प्रतीत होती है ।

वसन्धरायास्तनयान् विपद्य नियन्तिमारात्खरकालमद्य ।
शम्पाप्रदीपैः परिणामवाद्रीग्विलोकयन्त्यम्बुमुचोऽन्तरार्द्राः ॥
(वीरोदय) ४/११

इस वर्षा ऋतु में वसुन्धरा के तनयों अर्थात् वृक्ष रूप पुत्रों को जलाकर या नष्ट भ्रष्ट करके शीघ्रता से लुप्त (छिपे) हुए ग्रीष्मकाल को अन्तरङ्ग में आर्द्रता के धारक मेघ आँसू बहाते हुए से मानों शम्पा रूप बिजली के द्वारा उसे ढूढ रहे हैं ।

यहाँ कवि ने उत्प्रेक्षा की है कि ग्रीष्मकाल वृक्षों को जलाकर कहीं छिप गया है, उसे खोजने के लिए दुःखित् हुए मेघ वर्षा के बहाने आँसू बहाते हुए तथा बिजली रूप दीपकों को हाथ में लेकर इधर-उधर खोज रहे हैं ।

इस प्रकार उत्प्रेक्षा के अनेक उदाहरण[1] वीरोदय में प्राप्त हैं ।

अर्थान्तरन्यास - जैसे -

कवित्वत्येत्युदितो न जातु विकार आसीज्जिनराजमातुः ।
स्याद्दीपिकायाँ मरुतोऽधिकारः क्व विद्युतः किन्तु तथातिचारः ॥
(वीरोदय) ६/११

ऊपर जो माता के गर्भकाल में होने वाली बातों का वर्णन किया है, वह केवल कवित्व की दृष्टि से किया गया है, वस्तुतः जिनराज की माता के शरीर में किसी प्रकार का कोई विकार नहीं होता है । तेल बत्ती वाली साधारण दीपिका के बुझाने में पवन का अधिकार है । पर क्या वह बिजली के प्रकाश को बुझाने की सामर्थ्य रखता है ? अर्थात् नहीं ।

---

१ जैसे - वीरोदय ४/१२, १३, १४, १५, १६, १८, २०, २१, २२, २३, २४, ३९, ५/२७, ६/२६, २९, ७/१८, १९ इत्यादि ।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

यहाँ ऊपर की पंक्ति रूप विशेष का नीचे की पंक्ति रूप सामान्य से समर्थन किए जाने के कारण अर्थान्तिरन्यास अलङ्कार है ।

काव्यलिङ्ग - जहाँ कोई बात कही जाय और उसका हेतु उपस्थित किया जाय, वहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार होता है । जैसे -

अन्येऽपि बहवो जाताः कुमारश्रमणानराः ।
सर्वेष्वपि जयेष्वग्र गतः कामजयो यतः ॥ (वीरोदय)८/४१

अन्य भी बुहत से मनुष्य कुमार-श्रमण हुए हैं, अर्थात् विवाह न करके कुमार-काल में दीक्षित हुए हैं; क्योंकि सभी विजयों में काम पर विजय पाना अग्रगण्य है ।

श्लेष - श्लिष्ट पदों के द्वारा अनेक अर्थों का कथन करना श्लेष कहलाता है । जैसे -

शाखिषु विपल्लवत्वमथेतत् संकुचितत्वं खलु मित्रेऽतः ।
शैत्यमुपेत्य सदाचरणेषु कलहमिते द्विजगणेऽत्र मे शुक् ॥
(वीरोदय)९/४३

प्रथम अर्थ - इस शीतकाल को पाकर वृक्षों में पत्रों का अभाव, दिन में संकुचितता अर्थात् दिन का छोटा होना, चरणों का ठिठुरना और दाँतों का कलह अर्थात् किटकिटाना मेरे लिए शोचनीय है ।

द्वितीय अर्थ - कुटुम्बी जनों में विपत्ति का प्राप्त होना, मित्र का रुठना, सत् आचरण करने में शिथिलता या आलस्य करना और द्विजगण (ब्राह्मण वर्ग) में कलह होना ये सभी बातें मेरे लिए चिन्तनीय हैं ।

विहाय मनसा वाचा कर्मणा सदनाश्रयम् ।
उपैम्यहमपि प्रीत्या सदाऽऽनन्दनकं वनम् ॥ १०/२१

मैं भी नगर को -जो कि सदनाश्रय है अर्थात् सदनों (भवनों) से घिरा हुआ है, दूसरे अर्थ में सद् अनाश्रय अर्थात् सज्जनों के आनन्द से रहित है, ऐसे नगर को छोड़कर सज्जनों के लिए आनन्द कन्द स्वरूप वन को अथवा सदा आनन्द देने वाले नन्दन वन को मन, वचन, काय से प्रेम पूर्वक प्राप्त होता हूँ।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

यहाँ पर सद्नाश्रयम् और सदाऽऽनन्दनकं में श्लेष है ।

एकावली - जहां पूर्व-पूर्व वस्तु के प्रति उत्तर वस्तु विशेषण रूप से रखी जाय अथवा हटायी जाय, वह दो प्रकार का एकावली होता है । द्वितीय उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है -

नाऽसौ नरो यो न विभाति भोगी भोगोऽपि नाऽसौ न वृषप्रयोगी।
वृषो न सो ऽसख्यसमर्थितः स्यात्सख्यं च तन्नात्र कदापि न स्यात् ॥
(वीरोदय) २/३८

उस कुण्डपुर में ऐसा कोई मनुष्य नहीं था, जो भोगी न हो और वहाँ कोई ऐसा भोग नहीं था, जो कि धर्मसंप्रयोगी अर्थात् धर्मानुकूल न हो । वहाँ ऐसा कोई धर्म नहीं था, जो कि असख्य (शत्रुता) समर्पित अर्थात् शत्रुता पैदा करने वाला हो और ऐसी कोई मित्रता न थी, जो कि कदाचित्क हो अर्थात् स्थायी न हो ।

रुपक - उपमान और उपमेय जहाँ अभेद हो, वहाँ रुपक अलङ्कार होता है । जैसे -

यत्कृष्णवर्त्मत्वमृते प्रतापवह्निं सदाऽमुष्यजमनो ऽभ्यवाप ।
(वीरोदय) ३/६

इस राजा की प्रताप रूपी अग्नि को लोग सदा ही कृष्णावर्त्मत्व (धूमपान) के बिना ही स्वीकार करते थे ।

यहां प्रताप को अग्नि कहा गया है, अतः रूपक है ।

उपमा - प्रस्फुट रूप से सुन्दर साम्य को उपमा कहते हैं । जैसे -

श्रिये जिनः सोऽस्तु यदीय सेवा समस्त संश्रोतृदजरस्य मेवा ।
द्राक्षेव मृद्वी रसने हृदोऽपि प्रसादिनी नोऽस्तु मनाक् श्रमोऽपि ॥
वीरोदय १/१

वे जिन भगवान् हम सबके कल्याण के लिये हों, जिनकी कि चरण सेवा समस्त श्रोताजनो को और मेरे लिए मेवा के तुल्य है तथा जिनकी सेवा द्राक्षा के समान आस्वादन में मिष्ट एवं मृदु है और हृदय को प्रसन्न करने

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

वाली है । अतएव उनकी चरण सेवा के प्रसाद से इस काव्य रचना में मेरा जरा सा भी श्रम नहीं होगा ।

यहाँ सेवा को द्राक्षा के समान मृदु बतलाने के कारण उपमा अलङ्कार है।

दृष्टान्त - पारस्परिक समान धर्म रखने वाले विषयों का जहाँ बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से वर्णन हो, वहाँ दृष्टान्त अलङ्कार होता है । जैसे -

प्रभोरभूत्सम्प्रति दिव्यबोधः विद्याऽवशिष्टा कथमस्त्वतेऽघः ।
कलाधरे तिष्ठति तारकाणां ततिः स्वतो व्योम्नि धृतप्रमाणा ॥
वीरोदय १२।४९

भगवान् को जब दिव्य बोध प्राप्त हो गया है तो फिर संसार की समस्त विघाओं में से कोई भी विघा अवशिष्ट कैसे रह सकती थी ? आकाश में कलाधर (चन्द्र) के रहते हुए ताराओं की पंक्ति तो स्वतः ही अपने परिवार के साथ उदित हो जाती है ।

यहाँ दोनों वाक्यों में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होने के कारण दृष्टान्त अलङ्कार है।

अतिशयोक्ति - अध्यवसाय के सिद्ध होने पर अतिशोयक्ति अलंकार होता है । जैसे -

मेरोर्यदौद्दत्य मिता नितम्बे फुल्लत्वमब्जादथवाऽऽस्यबिम्बे ।
गम्भीर्यमब्धेरुतनाभिकायां श्रेणौ विशालत्वमथो धराया ॥
वीरोदय ३।२२

उस रानी ने अपनी नितम्ब भाग में सुमेरु की उद्दतता को, मुखबिम्ब में कमल की प्रफुल्लता को, नाभि में समुद्र की गम्भीरता को और श्रेणिभाग (नाभि से अधोभाग) में पृथ्वी की विशालता को धारण किया था ।

यमक - अर्थ हो तो पृथक्-पृथक् अर्थ वाले (अन्यथा निरर्थक) स्वर व्यञ्जन समुदाय की उसी क्रम से आवृति को यमक अलङ्कार कहते हैं । जैसे -

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

मृगीदृशश्चापलता स्वयं या स्मरेण सा चापलता ऽपि रम्या ।
मनोजहाराङ्गभृतः क्षेणान मनोजहाराऽथ निजेक्षणेन ॥

वीरोदय ३।२५

इस मृगनयनी की जो स्वाभाविक चपलता थी, उसी को कामदेव ने अपनी सुन्दर घनुषलता बनायी, क्योंकि कामदेव को हार के समान हृदय का अलङ्कार मानने वाली वह रानी अपने कटाक्ष से क्षणमात्र में मनुष्यों के मन को हर लेती थी ।

यहाँ पर चापलता तथा चाप लता एवं मनोजहार तथा मनोज हार शब्दों की उसी क्रम से आवृत्ति हुई है, किन्तु अर्थ भिन्न-भिन्न हैं । पहले चापलता शब्द का **अर्थ** - चपलता एवं दूसरे चाप लता का अर्थ घनुष लता है । इसी प्रकार पहले मनोज हार का अर्थ कामदेव को हार और दूसरे मनोजहार का अर्थ मनुष्यों के मन को हर लेना है ।

समासोक्ति - जहाँ समान विशेषणों, समान कार्यों और समान लिङ्गों से उपमेय अथवा उपमान से अन्य अर्थात् अप्रस्तुत अथवा प्रस्तुत अर्थ अभिव्यक्त होता है, वह संक्षेप उक्ति अर्थात् समासोक्ति कही गयी है । जैसे-

श्लोकन्तु लोकोपकृतौ विधातुं पत्राणि वर्षा कलमं चलातुम् ।
विशारदाऽभ्यारभते विचारिन् भूयो भवन् वार्दल आशुकारी ॥

वीरोदय ४।१३

जैसे कोई विशारदा (विदुषी) स्त्री लोकोपकार के हेतु श्लोक की रचना करने के लिए पत्र (कागज), मषिपात्र (दवात) और कलम लाने को उद्यत होती है, उसी प्रकार यह विशारदा अर्थात् शरद ऋतु से रहित वर्षा ऋतु लोकोपकार के लिए मानों श्लोक रचने को वृक्षों के पत्र रुपी कागज, बादल रुपी दवात और धान्य रुप कलम को अपना रही है । पुनः हे विचारशील मित्र, उक्त कार्य को सम्पन्न करने के लिए यह बार्दल (मेघ) बार-बार शीघ्रता कर रहा है । आशुनाम नाना प्रकार के धान्यों का भी है, सो यह मेघ जल-वर्षा करके धान्यों को शीघ्र उत्पन्न कर रहा है ।

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

उक्त पद्य में कहा तो गया है विशारदा स्त्री के सम्बन्ध में, किन्तु अर्थ अभिव्यक्त हो रहा है वर्षा ऋतु सम्बन्धी। अत: यहाँ समासोक्ति है ।

अनुप्रास - स्वर की विषमता होने पर भी व्यञ्जन मात्र की समता को अनुप्रास अलङ्कार कहते हैं । जैसे -

परागनीरोद्भरितप्रसून श्रृङ्गैरनङ्गैकसखा मुखानि ।
मधुर्धनीनाम वनीजनीनां मरुत्करेणोक्षतु तानि मानी ।।
वीरोदय ६।१३

उक्त पद्य में न् र् म् एवम् वर्णों की अनेक बार आवृत्ति होने से अनुप्रास है ।

भ्रान्तिमान् - जब किसी वस्तु में समता के कारण अन्य वस्तु की भ्रान्ति कवि की प्रतिभा के द्वारा समुत्पन्न होती है । तो वहाँ भ्रान्तिमान् अलङ्कार होता है । जैसे-

यत्खातिकावारिणि वारणानां लसन्ति शङ्कामनुसन्दधानाः।
शनैश्चरन्तः प्रतिमावतारान्निादिनो वारिमुचोऽप्युदाराः ।।
वीरोदय २।३०

उदार, गर्जनायुक्त एवं धीरे-धीरे जाते हुए मेघ जिस नगर की खाई के जल में प्रतिबिम्बित अपने रुप से हाथियों की शंका को उत्पन्न करते हुए शोभित होते हैं ।

यहाँ खाई के जल में प्रतिबिम्बित मेघों में हाथी की भ्रान्ति हो रही है।

सन्देह - उपमेय में कवि की प्रतिभा से जब उपमान का संशय उत्पन्न किया जाता है, तब सन्देह अलङ्काल होता है । जैसे -

गत्वा प्रतोली शिखिराग्रलग्नेन्दु कान्तनिर्यज्जलभापिपासुः ।
भीतो ऽथ तन्नोल्लिखितान्मृगेन्द्रादिन्दोर्मृगः प्रत्यपयात्यथाऽऽशु ।।
वीरोदय २।३४

उन जिनालयों की प्रतोली (द्वार के ऊपरी भाग) के शिखर के अग्रभाग पर लगे चन्द्रकान्तमणियों से निकलते हुए जल को पीने का इच्छुक चन्द्रमा का मृग वहाँ जाकर और वहाँ पर उल्लिखित (उत्कीर्ण, चित्रित) अपने शत्रु मृगराज (सिंह) को देखकर भयभीत हो तुरन्त ही वापिस लौट आता है ।

यहाँ पर चित्रित सिंह में यथार्थ सिंह का संशय होने के कारण सन्देह अलङ्कार है ।

अपहृति - जहाँ उपमेय का निषेध कर उपमान की स्थापना की जाती है, वहाँ अपहृति अलङ्कार होता है । जैसे -

न हि पलाशतरोर्मुकुलोद्गति र्वनभुवां नखरक्षतसन्ततिः ।
लसति किन्तु सती समयोचितासुरमिणाऽऽकलिताऽप्यति लोहिता ॥६/३९

वसन्त ऋतु में पलाश (ढाक) का वृक्ष फूलता है, वे उसके फूल नहीं, किन्तु वन लक्ष्मी के स्तनों पर नखक्षत (नखों के घाव रुप चिन्ह) की परम्परा ही है, जो कि वसन्त रुपी रसिक पुरुष ने उस पर की है, इसीलिए वह अति रक्त वर्ण वाली शोभित हो रही है।

यहाँ ढाक के फूल रुप उपमेय का निषेध कर वनलक्ष्मी के स्तनों पर नखक्षत की परम्परा की स्थापना की जाने से अपहृति अलङ्कार है ।

परिसंख्या - कोई पूछी गयी या बिना पूछी हुई कही गयी बात जो उसी प्रकार की अन्य वस्तु के निषेध में पर्यवसित होती है, वह परिसंख्या कहलाता है । जैसे -

निरौष्ठ्यकाव्ये। ष्वपवादवत्ताऽथ हेतुवादे परमोहसत्ता ।
अपाङ्गनामश्रवणं कटाक्षे छिद्राधिकारित्वमभूद् गवाक्षे ॥२/३५

वहाँ निरौष्ठ्य अर्थात् ओष्ठ से न बोले जाने वाले काव्यों में ही अपवादपना था यानी पकार नहीं बोला जाता था, किन्तु अन्यत्र अपवाद नहीं था अर्थात् कहीं कोई किसी की निन्दा नहीं करता था । हेतुवाद (तर्कशास्त्र) में ही परम उहपना (तर्क वितर्कपना) था, अन्यत्र परम (महा) मोह का अभाव था । वहां अपाङ्ग, यह नाम स्त्रियों के नेत्रों में ही सुना जाता था, अन्यत्र

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

कहीं कोई अपाङ्ग (हीनङ्ग) नहीं था। वहां छिद्र का अधिकारीपना भवनों के गवाक्षों (खिड़कियों) में ही था, अन्य कोई पुरुष वहाँ पर छिद्रान्वेषी नहीं था।

इसके अतिरिक्त वीरोदय महाकाव्य में वक्रोक्ति[१], समन्वय[२], अतिदेश[३], मालोपमा[४], अन्योक्ति[५], संसृष्टि[६], सङ्कर[७] तथा गोमूत्रिकाबन्ध[८], यानबन्ध[९], पद्मबन्ध[१०], तालवृन्त बन्ध[११], जैसे चित्रालङ्कार आदि अलङ्कारों की छटा दर्शनीय है।

महाकवि ज्ञानसागर की काव्य विषयक अवधारणा - महाकवि ज्ञानसागर काव्य को स्वर्ग के समान समझते हैं। उनके अनुसार जैसे स्वर्ग सार रुप है और कृती जनों को इष्ट है, इसी प्रकार यह काव्य भी अलङ्कारों से युक्त है और ज्ञानियों को अभीष्ट है। स्वर्ग सुर-सार्थ अर्थात् देवों के समुदाय से रम्य होता है और यह काव्य शृङ्गार, शान्त आदि सुरसों के अर्थ से रमणीक है। स्वर्ग सब प्रकार की विपत्ति के अभाव होने के कारण अभिगम्य होता है और यह काव्य भी कुत्सित पदों से रहित होने से आश्रय के योग्य है। स्वर्ग कल्पवृक्षों के समूह से सदा उल्लासयुक्त होता है और यह काव्य नाना प्रकार की कल्पनाओं की उड़ानों से उल्लासमान हैं[१२]। उत्तम काव्य के प्रकाशित होने पर खलजन भी मलिनवदन हो जाते हैं। और उसके दोषान्वेषण में ही तत्पर रहते हैं। ऐसे लोग उलूक के सदृश होते है, क्योंकि दिन के प्रतिभासमान होने पर उलक लोग मलिनता को प्राप्त होते हैं और दोषा (रात्रि) में अनुरक्त होते हैं।[१३]

देव अमृतपायी और अनिमेषनयन माने जाते हैं, अतः उनको तो काव्यरुप रसायन पान का अवसर ही नहीं है। अतः वे अमृतपान करते हुए भी मनुष्यता को नहीं पा सकते तथा जो बुद्धि विहीन हैं, ऐसे जड़ लोग भी काव्य-रसायन का पान नहीं कर सकते। अनिमेष नाम मछली का है और पीयूष नाम जल का भी है। मछली अनिमेष होकर भी जल का ही पान कर सकती है, उसके काव्य रसायन के पान की सम्भावना ही कहाँ है ? तात्पर्य

---

१. वीरोदय १/१०,३/३ २. वही ३/३८ ३. वही ३/१३
४. वही ३/१८ ५. वही ४/१९ ६. वही ३/२५
७. वही २/१८ ८. वही २२/३७ ९. वही २२/३८
१०. वही २२/३९ ११. वही २२/४० १२. वही १/२३
१३. वही १/२०

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

यह कि कवि काव्यरुप रसायन को पीयूष से भी श्रेष्ठ मानता है, क्योंकि इसके पान से साधारण मनुष्य भी सच्ची मानवता को प्राप्त कर लेता है[१]।

भले प्रकार कही गयी कविता हार के समान आचरण करती है । जैसे हार उत्तम गोल मोतियों वाला होता है। उसी प्रकार यह कविता भी उत्तम वृत्त अर्थात् छन्दों में रची गयी है । हार सूत्र (डोरे) से अनुगत होता है और यह कविता भी आगम रुप सूत्रों के सारभूत अधिकारों वाली है । हार को उदार सत्पुरुष कण्ठ में धारण करते हैं और इस उदार कविता को सत्पुरुष कण्ठस्थ करते हैं, ऐसी यह कविता समस्त लोक के कल्याण के लिए होवे[२]।

कविता आर्यकुलोत्पन्न भार्या के तुल्य है । जैसे कुलीन भार्या उत्तम वर्ण रुप सौन्दर्य की मूर्ति होती है, उसी प्रकार यह कविता भी उत्तम वर्णों के द्वारा निर्मित मूर्ति वाली है । जैसे - भार्या पदनिक्षेप के द्वारा शोभायमान होती है, उसी प्रकार यह कविता भी उत्तम पदों के न्यास वाली है । जैसे भार्या उत्तम अलङ्कारों को धारण करती है, उसी प्रकार यह कविता भी नाना प्रकार के अलङ्कारों से युक्त है । इस प्रकार यह कविता आर्या भार्या के समान मनुष्य के चित्त को अनुरंजित करने वाली है[३] ।

वीरोदय पर पूर्ववर्ती ग्रन्थों का प्रभाव - वीरोदय के अध्ययन से विदित होता है कि कवि ने सैकड़ों ग्रन्थों का अध्ययन इसकी रचना से पूर्व किया था, यही कारण है कि इन रचनाओं का वीरोदय पर प्रभाव परिलक्षित होता है । इस प्रकार के प्रभाव की किञ्चत् झाँकी यहाँ प्रस्तुत है -

मेघदूत और वीरोदय - वीरोदय में महाकवि ज्ञानसागर जब कहते हैं कि उदार, गर्जनायुक्त, एवं धीरे जाते हुए मेघ जिस कुण्डपुर की खाई के जल में प्रतिबिम्बित अपने रुप से हाथियों की शङ्का को उत्पन्न करते हुए शोभित होते हैं, तो वहाँ पर मेघदूत की याद आ जाती है, जहाँ कालिदास ने मेघ से हाथी के बच्चे के समान छोटे आकार को धारण कर यक्ष के

---

१. वीरोदय १/२२   २. वही १/२४   ३. वही १/२७

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

क्रीडापर्वत पर बैठकर बिजली रुपी दृष्टि को घर के अन्दर प्रविष्ट कराने के लिए कहा[१] है ।

वीरोदय के द्वादश सर्ग के ४१वें पद्य में सूर्य के प्रसन्न होकर विचार-मात्र से ही कुहरे को दूर करने[२] का उल्लेख किया गया है। मेघदूत में सूर्य के कमलिनी के कमल रुप मुख से ओस रुपी आँसू को दूर करने के लिए लौटने का उल्लेख है[३] ।

मेघदूत में गङ्गा के स्वच्छ जल में मेघ की छाया पड़ने पर संगम स्थान से भिन्न स्थान में गंगा यमुना के सङ्गम की कल्पना कालिदास ने की है । वीरोदय में कहा गया है कि परम विशुद्धि को प्राप्त क्षत्रिय-बुद्धि महावीर और विप्रबुद्धि इन्द्रभूति का अभूतपूर्व समागम हुआ, जैसे कि प्रयाग में गंगा जल का यमुना जल से संगम तीर्थ रुप से परिणत हो गया और आज तक उसका स्पष्ट रुप से उपयोग हो रहा है । दोनों पद्य इस प्रकार है-

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्द्धलम्बी ।
त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः ।
संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसिच्छायया सौ
स्यादस्थानोपगत यमुनासङ्ग में वाभिरामा ॥ मेघदूत पूर्व मेघ – ५४
समागमः क्षत्रियविप्रबुद्धयोर भूदपूर्वः परिरब्धशुद्धयो) ।
गाङ्गस्य वै यामुनतः प्रयोग इवाऽऽसकौ स्पष्टतयोपयोगः ॥
वीरोदय १४/४७

---

१. गत्वा सद्यः कलभतनुतां शीघ्र सम्पातहेतोः ।
क्रीडाशैले प्रथम कथिते रम्यसानौ निषद्यः ॥
अर्हस्यन्तर्भवनपतिं कर्तुमल्पाल्पभासं।
खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम ॥ मेघदूत उत्तर मेघ २१

२. विचारंमात्रेण तपोभृदद्य पूषेव कल्ये कुहरं प्रसद्य ॥ वीरोदय ॥१२/४१

3. प्रालेयास्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः। प्रत्यावृत्तस्त्वयि कर रुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः ॥
मेघदूत-पूर्व मेघ-४२

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

अभिज्ञान शाकुन्तलम् और वीरोदय - अभिज्ञान शाकुन्तल के चौथे अङ्क के एक प्रसङ्ग में शकुन्तला कहती है कि कमलिनी के पत्ते की ओट में छिपे हुए भी साथी चकवे को न देखने से व्याकुल यह चकवी चिल्ला रही है कि मैं दुष्कर कार्य कर रही हूँ क्योंकि अपने प्रियतम से इतनी दूर होने पर भी मुझे कुछ नहीं हो रहा है। इस पर अनसूया कहती है कि सखी। ऐसा मत कहो । यह चकवी भी प्रिय (चकवे) के बिना दु:ख के कारण अत्यधिक लम्बी प्रतीत होने वाली रात को व्यतीत करती है। आशा का बन्धन महान् भी वियोग को सहन करा देता है[१] । वीरोदय महाकाव्य में भी चकवी के पति से वियुक्त होने का वर्णन किया गया है-

'कुण्डपुर के भवनों में लगे हुए अनेक नीलमणियों की प्रभा समूह से निरन्तर ही यहाँ पर रात्रि है, इस कल्पना से वापिका के तट पर बैठी हुई वह दीन चकवी दिन में भी पति के संयोग से रहित होकर सन्ताप को प्राप्त होती है[२] ।'

अभिज्ञान शाकुन्तल में शकुन्तला को प्रकृति अनेक उपहार प्रदान करती है -

'किसी वृक्ष के द्वारा हमें चन्द्रमा के समान शुभ माङ्गलिक रेशमी वस्त्र प्रकट करके दिया गया । किसी के द्वारा पैरों को रँगने योग्य महावर दिया गया । अन्य वृक्षों के द्वारा कलाई तक उठे हुऐ और निकलते हुए नए पल्लवों की स्पर्द्धा करने वाले वनदेवता के करतलों से आभूषण दिए गए[३] ।'

वीरोदय के पंचम सर्ग में भगवान महावीर की माता प्रियकारिणी को देवियों द्वारा विभिन्न उपकरणों से मण्डित करने का अनेक पद्यों में वर्णन है । इन वस्तुओं में दर्पण, जल, उबटन, वस्त्र, अंजन, कमल, कर्णफूल, तिलक नूपर, पुष्पहार, बाहुबन्ध, कङ्कण, मृदङ्ग, वीणा तथा मंजीरे प्रसङ्गानुसार वर्णित है[४]।

---

१. अभिज्ञान शाकुन्तल ४/१६

२. सौद्याग्रलग्नबहुनीलमणिप्रभाभिर्दोषायितत्वमिह सन्ततमेव ताभि:।
कान्ताप्रसङ्गरहिता खलु चक्रवाकी वापीतटेऽप्यहनि ताम्यति सा वराकी ॥वीरोदय २॥८५

३. अभिज्ञान शाकु. ४/५

४. वीरोदय ५/९-१७

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

अभिज्ञान शाकुन्तल के षष्ठ अङ्क में धीवर कहता है -

शहजे किल जो विणिन्दिए णहु दे कम्म विवज्जणीअए ।
पशुमालणकम्भदालुणे अणुकम्पामिदु एव्व शोत्तिए ॥

अर्थात् निन्दित भी जो काम वस्तुतः वंश परम्परा से प्राप्त है, उसको निश्चय ही नहीं छोड़ना चाहिए । दयाभाव से कोमल हृदय वाला श्रोत्रिय भी पशुओं की हत्या जैसे कर्म के कारण कठोर होता है ।

शाकुन्तल के इसी प्रसङ्ग का मानों उत्तर देने के लिए वीरोदय में कहा है -

न चौर्यं पुनस्तस्करायास्त्ववस्तु गवां मारणं वा नृशंसाङ्गिनस्तु ।
न निर्वाच्यमेतद्यतः सोऽपि मर्त्यः कुतः स्यात्पुनस्तेन सोऽर्थः प्रवर्त्यः ॥१६/२०

यदि कहा जाय कि अपने पदोचित कार्य को करना मनुष्य का कर्त्तव्य है, तब तो चोर का चोरी करना और कसाई का गायों का मारना भी उनके पदानुसार कर्त्तव्य सिद्ध होता है, सो ऐसा नहीं समझना चाहिए, क्योंकि चोरी और हिंसा करना तो मनुष्यमात्र का अकर्त्तव्य कहा गया है, फिर उन अकर्त्तव्यों को करना कर्त्तव्य कैसे माना जा सकता है ? इसलिए मनुष्य को सत्कर्त्तव्य में ही प्रवृत्ति करना चाहिए, असत्कर्त्तव्य में नहीं ।

मांस का खाना, निरपराध प्राणियों को मारना, दूसरे की स्वामित्व वाली वस्तु का अपहरण करना इत्यादि निन्द्य कार्य संसार में किसी भी प्राणी के करने योग्य नहीं हैं । अतः इन दुष्कृत्यों में प्रवृत्ति करने वाला क्यों न पाप गर्त में गिरेगा[१] ?

रघुवंश और वीरोदय - रघुवंश के द्वितीय सर्ग राजा दिलीप नन्दिनी का छाया के समान अनुगमन करते है -

स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्धधीरः ।
जलाभिलाषी जलमाददाना छायेव तां भूपतिरन्व गच्छत ॥
रघुवंश २/६

---
१. वही १६/२१

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

वीरोदय में राजा सिद्धार्थ का उनकी रानी प्रियकारिणी छाया के समान अनुगमन करती है -

छायेव सूर्यस्य सदा ऽनुगन्त्री बभूव मायेव विधेः सुमन्त्रिन् ।
नृपस्य नाम्ना प्रियकारिणीति यस्याः पुनीताप्रणयप्रणीतिः ।।
वीरोदय ३/१५

हे सुमन्त्रिन् ! इस सिद्धार्थ राजा की प्रियकारिणी इस नाम से प्रसिद्ध रानी थी, जो कि सूर्य की छाया के समान एवं विधि की माया के समान पति का सदा अनुगमन करती थी और जिसका प्रणय-प्रणयन अर्थात् प्रेम प्रदर्शन पवित्र था । अत: वह अपने प्रियकारिणी इस नाम को सार्थक करती थी ।

रघुवंश के राजकुमार 'प्रजायै गृहमेधिनाम् प्रजा' अर्थात् सन्तानोत्पत्ति के लिए गृहस्थ धर्म स्वीकार करते हैं तो वीरोदय के नायक महावीर प्रजा की सेवा के लिए ब्रह्मचर्य की आराधना करते हैं -

तदर्थमेवेदं ब्रह्मचर्यमाराधयाम्यहम् ।। वीरोदय ८/४३

कालिदास ने रघुवंश में दिलीप और सुदक्षिणा के मध्य में विद्यमान नन्दिनी की उपमा दिन और रात्री के मध्य में विद्यमान सन्ध्या से दी है-

तदन्तरे सा विरराजधेनुः
दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या ।। रघुवंश २/२०

महाकवि ज्ञानसागर ने सम्पत्ति और विपत्ति के बीच में रूचिकर मनुष्यता की कल्पना रात और दिन के मध्य स्थित सन्ध्या से की है -

विपन्निशेवाऽनुमिता भुवीतः सम्पत्तिभावो दिनवानीतः ।
सन्ध्येव भायाद् रुचिरा नृता तु द्वयोरुपात्तप्रणयप्रमातुः ।।
वीरोदय १७/१३

संसार में मनुष्य को सम्पत्ति का प्राप्त होना दिन के समान पुनीत है, इसी प्रकार विपति का आना भी रात्रि के समान अनुमीत (अवश्यम्भावी)

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

है । इन दोनों के मध्य में मध्यस्थ रुप से उपस्थित स्नेहभाव कोप्राप्त होने वाले महानुभाव के मनुष्यता सन्ध्या काल के समान रुचिकर प्रतीत होना चाहिए।

यहाँ यह स्मरणीय है कि कालिदास ने मेघदूत में सुख और दुःख करे चक्रनेमिक्रमेण अवश्यम्भावी माना है । वे कहते हैं -

कस्यैकान्तं सुखमुपगतं दुःखमेकान्ततो वा ।
नीचैर्गच्छत्युपरिच दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥ मेघदूत–उत्तरमेघ

कादम्बरी और वीरोदय काव्य - महाकवि बाणभट्ट ने जाबालि ऋषि के आश्रम का वर्णन करते हुए कहा है - 'अत्र हि शाश्वतिकमपहाय विरोधपमुपशान्तात्मानस्तिर्यञ्चोऽपि तपोवन वसतिसुखमनुभवन्ति। तथा हि एष विकचोत्पलवनरचनानुकारिणमुत्पतच्चारुचन्द्रकशतं हरिणलोचन घुतिशबल भिनवशाद्वलमिव विशति शिखिनः कलापमाहतो निःशङ्क महिः ।' अर्थात् यहां पर भी अपना परम्परागत विरोध छोड़कर शान्त आत्मा वाले होते हुए तपोवन में रहने का सुख अनुभव करते हैं। जैसे कि-यह धूप से व्याकुल सर्प खिले हुए कमलवन की रचना का अनुकरण करने वाले, सैकड़ों उठते हुए सुन्दर चन्द्रों वाले हिरण के नेत्रों की कान्ति के समान चितकबरे मोरों के समूह में मानों ताजी हरी घास में ही निःशङ्क होकर प्रवेश कर रहा है ।

वीरोदय में ग्रीष्म वर्णन के प्रसङ्ग में इसी कल्पना का सहारा लिया गया है -

सन्तापितः संस्तपनस्य पादैः पथि व्रजन् पांशुभिरुत्कृदङ्गः
तलो मयूरस्य निषीदतीति श्वसन्मुहुर्जिह्मगतिर्भुजङ्ग ॥
वीरोदय १२/११

सूर्य की प्रखर किरणों से सन्ताप को प्राप्त होता हुआ, मार्ग में चलती हुई उष्ण धूलि से अपने अङ्ग को ऊंचा उठाता हुआ, बार-बार दीर्घ श्वास छोड़ता हुआ भुजंग कुंठित गति होकर छाया प्राप्त करने की इच्छा से मोर के तले जाकर बैठ जाता है ।

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

शिशुपालवध और वीरोदय - शिशुपालवध में नारद के आकाश मार्ग से आने पर 'सब ओर को फैलने वाला तेज नीचे की ओर गमन कर रहा है, यह क्या है, इस प्रकार लोगों ने व्याकुलता पूर्वक देखा[१] । श्रीकृष्ण जी उनका, स्वागत करने के लिए ऊँचे आसन से उठ गए[२] । उन्होंने नारद से आने का कारण पूछा[३] ।

वीरोदय के पंचम सर्ग के प्रारम्भ में भी बतलाया है कि भगवान महावीर के गर्भ में आने के बाद आकाश में सूर्य के प्रकाश को भी उल्लंघन करने वाला और उतरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होने वाला महान् प्रकाश दिखायी दिया, जिसे देखकर यह क्या है ? इस प्रकार तर्क वितर्क लोगों के हृदय में उत्पन्न हुआ[४] । इसके बाद श्री आदि देवताओं का वह प्रकाशमयी समूह लोगों के समीप आया । उसे आता हुआ देखकर राजा सिद्धार्थ खड़े होकर उन देवियों के अतिथि सत्कार की विधि में उद्यत हुए[५] । आप देव-लक्ष्मियों का मनुष्य के द्वार पर आगमन का क्या कारण है? यह वितर्क मेरे चित्त को व्याकुल कर रहा है, ऐसा उन सिद्धार्थ नरेश ने कहा[६] ।

श्रीमद्भगवद् गीता और वीरोदय - गीता में कहा है कि इस आत्मा को न तो शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न जल गीला कर सकता है, न वायु सुखा सकती है[७] । वीरोदय काव्य में भी कहा है कि यह आत्मा जल से कभी गीला नहीं होता, पवन का वेग इसे सूखा नहीं सकता और अग्नि इसे जला नहीं सकती, फिर यह जीव इस संसार में अग्नि, जलादिक से क्यों व्यर्थ ही कष्ट की कथा को प्राप्त हो[८]?

---

१. पतत्यधो धाम विसारि सर्वतः, किमेतदित्याकुलमीक्षितं जनैः ॥ शिशुपाल वध १/२

२. जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः ॥ शिशुपाल वध १/१२

३. गतस्पृहोऽप्यागमनं प्रयोजनं वदेति वक्तुं व्यवसीयते यया ॥ शिशु १/३०

४. वीरोदय ५/१ ५. वही ५/२ ६. वही ५/३

७. नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः । नैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ श्रीमद् भगवद्गीता २/२३

८. नात्मा ऽम्भसाऽऽर्द्रत्वमसौ प्रयाति न शोषयेत्तंभुवि वायुतातिः ।
न वह्निना तस्मिुपैति जातु व्यथाकथामेष कुतः प्रयातु ॥ वीरोदय १२/३४

****

नैषधीयचरितम् और वीरोदय - नैषधीयचरितम् में कहा गया है -

अधीतिबोधाचरणप्रचारणैर,
दशाश्चतस्त्रः प्रणयन्नुपांधिभिः ।
चतुर्दशत्वं कृतवान् कुतः स्वयं,
न वेद्मि विद्यासु चतुर्दशस्वयम् ॥ नै.च. १/४

चौदह विद्याओं में अध्ययन, अर्थज्ञान, आचरण और अध्यापन (इन चार) प्रकार से चार अवस्थायें करते हुए इसने स्वयं चतुर्दशता कैसे कर दी, यह मैं नहीं जानता हूँ।

इस पद्य का प्रभाव वीरोदय के निम्नलिखित पद्य पर दृष्टिगोचर होता है -

एका ऽस्य विद्या श्रवसोश्च तत्त्वं सम्प्राप्य लेभेऽथ चतुर्दशत्वं ।
शक्तिस्तथा नीतिचतुष्कसार मुपागताऽहो नवतां बभार
॥ वीरोदय ३/१४

इस सिद्धार्थ राजा की एक विद्या दोनों श्रवणों के तत्त्व को प्राप्त होकर चतुर्दशत्व को प्राप्त हुई तथा एक शक्ति भी नीतिचतुष्क के सारपने को प्राप्त होकर नवपने को धारण करती थी ।

वीरोदय में नैवध के उपर्युक्त पद्य से प्रभावित एक अन्य पद्य भी है-

अधीतिबोधाचरणप्रचारैश्चतुर्दशत्वं गमिताऽत्युदोरे : ।
विद्या चतुःषष्ठिरतः स्वभावदस्याश्च जाताः सकलाः कला वा ॥
वीरोदय ३/३०

नैषध में नल के तेज और यश के रहने पर ब्रह्मा, चन्द्र और सूर्य को व्यर्थ समझकर उनकी कुण्डली बना देता है । वीरोदय में रानी प्रियकारिणी के मुख के सामने चन्द्रमा को व्यर्थ समझकर विधाता चन्द्रमा पर रेखा खींच देता है, जिसे लोग कलङ्क कहते हैं । दोनों पद्य इस प्रकार हैं-

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

तदो जस तद्यशसः स्थिताविमौ
वृथेति चित्ते कुरुते यदा यदा ।
तनोति मानोः परिवेषकैतवात् ।
तदा विधिः कुण्लनां विधोरपि ॥ नैषधीयचरितम् १/१४

पूर्वं विनिर्माय विधुं विशेष यत्नाद्विधिस्तन्मुखमेवमेषः ।
कुर्वंस्तदुल्लेखकरीं चकार स तत्र लेखामिति तामुदार ॥
वीरोदय ३/२९

तत्त्वार्थसूत्र और वीरोदय - तत्त्वार्थसूत्र में प्रमाद के योग से किसी जीव के प्राणों का विनाश करना हिंसा कही गयी है । यही परिभाषा वीरोदय में भी उल्लिखित है[१] ।

तत्त्वार्थसूत्र में कहा है कि मायाचार तिर्यञ्च आयु के आस्रव का कारण है[२] । थोड़ा आरम्भ और थोड़ा परिग्रह मनुष्य आयु के आस्रव का कारण है[३] । वीरोदय में भी छल से पशुता और सन्तोष से मनुष्यपने का पाना कहा है[४] ।

सागारधर्मांकृत और वीरोदय - पं. आशाधर कृत सागारधर्मामृत में कहा है कि प्राणी के अङ्ग की अपेक्षा मांस और अन्न में समानता होते हुए भी धार्मिकों के द्वारा अन्न खाने योग्य हैं, किन्तु मांस खाने योग्य नहीं है[५], क्योंकि स्त्रीत्व रुप सामान्य धर्म की अपेक्षा स्त्री और माता में समानता होने पर भी पुरुषों के द्वारा स्त्री भोग्य है, माता भोग्य नहीं है। इस विषय में वीरोदयकार ने कहा है कि यदि कहा जाय कि मांस में और शाक पत्र में कौन सी

---

१. प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥ त. सूत्र ७/१३
२. प्रमादतो ऽसुव्यपरोपणं यद्वधो भवत्येष सतामगम्यः ॥ वीरोदय १४/१६
३. माया तैर्यग्योनस्य, अल्पारम्भपरिग्रहत्व मानुषस्य ॥ त. सूत्र ६/१६/-१७
४. श्वभ्रं रुषा लुब्धकताबलेन कीटादितां वा पशुतां छलेन ।
परोपकारेण सुरश्रियं स सन्तोषतो याति नरत्वशंसः ॥ वीरोदय १४/२७
५. सागारधर्मांकृत २/१०

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

विशेषता है ? क्योंकि दोनों ही प्राणियों के शरीर के ही अङ्ग हैं, सो ऐसा कहने का वचन भी उपादेय नहीं है, क्योंकि गोबर और दूध ये दोनों ही गाय-भैंस आदि से उत्पन्न होते हैं, फिर मनुष्य दूध को ही क्यों खाता है और गोबर को क्यों नहीं खाता ? इससे ज्ञात होता है कि प्राणिजनित वस्तुओं में जो पवित्र होती है, वह ग्राह्य है, अपवित्र नहीं । अत: शाक पत्र और दूध ग्राह्य है, मांस और गोबर आदि ग्राह्य नहीं है[1] ।

ज्ञानार्णव और वीरोदय - ज्ञानार्णव में कहा है कि यह चंचल चित्त रुपी बन्दर विषय रुपी वन में भ्रमता रहता है, जिस पुरुष ने इसको रोका, वश में किया, उसी के वाञ्छित फल की सिद्धि है[2] । इसी विचार को वीरोदय में व्यक्त करते हुए कहा है कि हे आत्मन् ! यदि तुम संयम रुप वृक्ष की सुरक्षा चाहते हो तो इसे अपने मन रुप मर्कट को निराशा रुप साँकल से अच्छी तरह जकड़ कर बाँधो[3] ।

आप्तमीमांसा और वीरोदय - वीरोदय के चतुर्थ सर्ग में रानी प्रियकारिणी की उपमा आप्त मीमांसा से दी गई है -

अकलङ्कालङ्कारा: सुभगे देवागमार्थमनवद्यम् ।
गमयन्ती सन्नयत: किलाऽऽप्तीमांसिताख्या वा ॥ वीरोदय ४/३९

तुम मुझे आप्तमीमांसा के समान प्रतीत हो रही हो । जैसे समन्तभद्र स्वामी के द्वारा रची गयी आप्तमीमांसा अकलङ्क देव द्वारा रचित (अष्टशती वृत्ति) से अलङ्कृत हुई, उसी प्रकार तुम भी निर्मल आभूषणों को धारण करती हो । आप्तमीमांसा सन्नय से अर्थात् सप्तभङ्गी रुप स्याद्वाद न्याय के द्वारा निर्दोष अर्थ को प्रकट करती है और तुम भी अपनी सुन्दर चेष्टा से निर्दोष तीर्थङ्करदेव के आगमन को प्रकट कर रही हो ।

आप्तमीमांसा का दूसरा नाम देवागम स्तोत्र भी है । कवि ने इस दूसरे नाम का भी यहाँ प्रयोग किया है । आप्तमीमांसा में एक कारिका है -

स त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्राविरोधिवाक् ।
अविरोधो यदिष्टां ते प्रसिद्धेन न बाध्यते ॥ आप्तमीमांसा–६

---

१. वीरोदय १६/२३ २. ज्ञानार्णव २२/२३ ३.वीरोध्य ११/४३

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

हे भगवन् ! पूर्वोक्त निर्दोष आवरण और अज्ञानादि से रहित सर्वज्ञ तुम ही हो, क्योंकि आपके वचन युक्ति और शास्त्र के विरोध से रहित-अविरोधी है । अविरोधी इसलिए है क्योंकि आपका कहा इष्ट तत्त्व (मोक्ष तथा मोक्ष का कारण, संसार तथा संसार का कारण) प्रसिद्ध प्रमाण से बाधित नहीं होता है ।

इस कारिका का प्रभाव वीरोदय के निम्नलिखित पद्यों पर है -

मान्यं कुतोऽर्हद्वचनं समस्तु सत्यं यतस्तत्र समस्तु वस्तु ।
तस्मिन्नसत्यस्य कुतोऽस्त्वभाव उक्ते तदीये न विरोधभावः
॥ वीरोदय ५/३२

किं तत्र जीयादविरोधभावः विज्ञानतः सन्तुलितः प्रभावः ।
अहो न कल्याणकरी प्रणीतिर्गतानुगत्यैव मिहास्त्व पीति ॥
वीरोदय ५/३३

प्रश्न - अरहन्त जिनेन्द्र के ही वचन मान्य क्यों है ?
उत्तर - क्योंकि वे सत्य हैं और सत्य वचन में ही वस्तु तत्त्व समाविष्ट रहता है ।
प्रश्न - अर्हद्वचनों में असत्यपने का अभाव क्यों है ?
उत्तर - क्योंकि उनके कथन में पूर्वापर विरोध-भाव नहीं है ।
प्रश्न - उनके वचनों में अविरोधभाव क्यों है ?
उत्तर - क्योंकि उनके वचन विज्ञान से अर्थात् कैवल्य रुप विशिष्ट ज्ञान से प्रतिपादित होने के कारण सन्तुलित प्रभाव वाले हैं । अहो देवियो! जो बातें केवल गतानुगतिकता (भेड़चाल) से की जाती हैं, उनका आचरण कल्याणकारी नहीं होता ।

छहढाला और वीरोदय - छहढाला में सम्यग्दृष्टी को गृहस्थ होते हुए भी जल से भिन्न कमल के समान[१] गृह के प्रति निरासक्त कहा है। वीरोदय में ब्राह्मण का लक्षण कहा गया है- जैसे जल में रहते हुए भी कमलिनी उससे भिन्न रहती है, इसी प्रकार संसार में रहते हुए भी जो अलिप्त रहे[२]।

---

१. गेही पै गृह में न रचै ज्यों, जल तैं भिन्न कमल है । छहढाला ३/१५
२. जलेऽब्जिनीपत्र भिन्नः इष्टेऽप्यानिष्टे न जातु खिन्नः ।।वीरोदय १४/४०

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

भगवती आराधना और वीरोदय - भगवती आराधना की १५/४९ वीं गाथा में कहा गया है कि रोहेडग नगर में अग्नि नामक राजा का पुत्र क्रौञ्च नामक वैरी के द्वारा शक्ति नामक आयुध से मारा गया और उसकी वेदना को सहकर उत्तम अर्थ को प्राप्त हुआ । इसकी सम्पूर्ण कथा आराधना कथा प्रबन्ध[१], आराधना कथाकोश आदि ग्रन्थों में दी गयी है ।

इसी कथा को लक्ष्य कर वीरोदयकार ने कहा है -

आराधना कथा कोश में वर्णित कथा के अनुसार कार्त्तिकेय स्वामी इस भूतल पर पिता के द्वारा पुत्री से उत्पन्न हुए और उन्होंने ही यहाँ पर आचार्य पद की प्रतिष्ठा प्राप्त की । यह घटना देखकर जगत् एकनिष्ठ क्यों नहीं होगा[२] ।

प्रद्युम्नचरित और वीरोदय - वीरोदय के सप्तदश पर्व के ३२ वें पद्य में कहा गया है कि प्रद्युम्नचरित में कहा है कि कुत्ती ने और चाण्डाल ने मुनिराज से श्रावकों के लिए बतलाये गए अणुव्रतादि बारह व्रतों को धारण किया और उनका भली भाँति पालन कर सद्गति प्राप्त की है[३] । यहाँ प्रद्युम्नचरित से तात्पर्य महासेन कृत प्रद्युम्नचरित से है ।

बृहत्कथाकोश और वीरोदय - हरिषेण कृत बृहत्कथा कोष में कथाङ्क ९८ में राज मुनि की कथा है । उन मुनि ने पहिले एक नर्तकी के साथ व्यभिचार किया और उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ । पुनः एक कुम्हार की पुत्री के साथ व्यभिचार किया और उससे भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ । पुनः एक राजपुत्री से व्यभिचार किया और उससे भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ । पीछे वह इन तीनों ही पुत्रों के साथ प्रायश्चित लेकर मुनि बन गया और अन्त में वे चारों ही तपश्चरण कर मोक्ष गए । उसी हरिषेण कृत बृहत्कथाकोश कथांक ७४ में कथानक है कि (अहिंसा धर्म का पालन करने के उपलक्ष्य में) यमपाश चाण्डाल को राजा ने अपने आधे राज्य के दानपूर्वक अपनी लड़की उसे विवाह दी और उसकी पूजा की[४] ।

---

१. कथा नं, ७३

२. आराधनायां यदि कार्तिकेयः पित्रा सुतातोऽजनि भूतले यः ।
स चेदिहाचार्य पद प्रतिष्ठा को ऽथो न हि स्या जगदेकनिष्ठः ॥ वीरोदय १७/२०

३. वही १७/३२ ४. वही १७/३८-३९

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

आराधना कथा कोश और वीरोदय- सुदृष्टि सुनार का जीव अपनी व्यभिचारिणी स्त्री विमला के ही उदर से उत्पन्न हुआ, पीछे मुनि बनकर मोक्ष गया। उसके मोक्ष में जाने के लिए जाति का शाप कारण नहीं बना[1]। यह कथा आराधना कथाकोश में आयी है। बृहत्कथाकोश कथाङ्क १५३ में भी यह वर्णित है[2]।

पतञ्जलि महाभाष्य, श्लोक वार्तिक एवं वीरोदय - वीरोदय में कहा है कि जिन भगवान् के स्याद्वाद रुप इस सार वाक्य को पतञ्जलि महर्षि ने भी अपने भाष्य में स्वीकार किया है तथा मीमांसा मत के प्रधान व्याख्याता कुमारिल भट्ट ने भी अपने श्लोककार्तिक में इस स्याद्वाद सिद्धान्त को स्थान दिया है[3]। महाभाष्य में कहा गया है -

द्रव्य नित्य है और आकार यानी पर्याय अनित्य है। सुवर्ण किसी एक विशिष्ट आकार से पिण्डरुप होता है। पिण्डरुप का विनाश करके उससे माला बनायी जाती है। माला का विनाश करके उससे कड़े बनाए जाते हैं। कड़ों को तोड़कर उससे स्वस्तिक बनाए जाते हैं। स्वस्तिकों को गलाकर फिर सुवर्णपिण्ड हो जाता है। उसके अमुक आकार का विनाश करके खदिर अङ्गार के समान दो कुण्डल बना लिए जाते हैं। इस प्रकार आकार बदलता रहता है, परन्तु द्रव्य वही रहता है। आकार के नष्ट होने पर भी द्रव्य शेष रहता ही है[4]।

कुमारिल भट्ट का कहना है - जब सुवर्ण के प्याले को तोड़कर उसकी माला बनायी जाती है, तब जिसको प्याले की जरुरत है, उसको शोक होता है, जिसे माला की आवश्यकता है, उसे हर्ष होता है और जिसे सुवर्ण की

---

१. वीरोदय १७/३७   २. आराधना कथाकोश-भाग ३ पृ. ३७.

३. वीरोदय १९/१७

४. द्रव्यं नित्यम् आकृतिरनित्या। सुवर्ण कयाचिदाकृत्या युक्तं पिण्डो भवति, पिण्डाकृतिमुपमृद्य रुचकाः क्रियन्ते, रुचकाकृतिमुपमृद्य कटकाः क्रियन्ते, कटकाकृति मुपमृद्य स्वस्तिकाः क्रियन्ते। पुनरावृत्तः सुवर्णपिण्डः पुनरपरयाकृत्या युक्तः खदिराङ्गार सदृशे कुण्डले भवतः। आकृतिरन्या च अन्या च भवति, द्रव्यं पुनस्तदेव आकृत्युपमर्देन द्रव्यमेवावशिष्यते। महाभाष्यः पस्पशाह्निक।

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

आवश्यकता है, उसे न हर्ष होता है और न शोक । अतः वस्तु त्रयात्मक है । यदि उत्पाद, स्थिति और व्यय न होते तो तीन व्यक्तियों के तीन प्रकार के भाव न होते, क्योंकि प्याले के नाश के बिना प्याले की आवश्यकता वाले को शोक नहीं हो सकता । माला के उत्पाद के बिना माला की आवश्यकता वाले को हर्ष नहीं हो सकता और सुवर्ण की स्थिरता के बिना सुवर्ण इच्छुक को प्याले के विनाश और माला के उत्पाद में माध्यस्थ्य नहीं रह सकता। अतः वस्तु सामान्य से नित्य है[१] ।

वीरोदय काव्य पर वर्तमान परिस्थिति का प्रभाव - वीरोदय के नवम सर्ग में कवि ने भगवान् महावीर के समय की सामाजिक स्थिति का जो चित्रण किया है, ठीक वैसी ही परिस्थितियां आज भी विद्यमान हैं। आज गृहस्थ दशा में ही मुक्ति बतलाई जा रही है। उसी का यह फल है कि वे नर-कीट स्त्री-पुत्रादि का आश्रय छोड़े बिना ही अब घर में मर रहे हैं। आज कोई विरला ही ऐसा कृती पुरुष दृष्टिगोचर होता है, जो कि काम, सेवा एवं कुटुम्बादि से मोह छोड़कर आत्मकल्याण करता हो[२] । आज बुढापे में भी लोग नवोढा के साथ संगम चाहते हैं । आज करुणा रहित हुए कितने ही निर्दयी लोग दुष्कामी सिंह के हाथ में अपने उदर से उत्पन्न हुई बालिका को मृगी के समान स्वयं बेच रहे हैं[३] ।

आज संसार में मनुष्य अयोग्य वचनों से गुरुजनों का अपमान कर रहा है और पिता भी स्वार्थी बनकर अपने पुत्र का परित्याग कर रहा है । एक उदर से उत्पन्न दो सगे भाईयों में आज परस्पर अकारण ही शत्रुता दिखाई दे रही है और स्त्री पुरुष में कलह मचा हुआ है[४] । आज इस भूतल पर समस्त जन अपनी रोटी को मोटी बनाने में लग रहे हैं । कोई भी किसी

---

१. वर्द्धमानकभङ्गे च रुचकः क्रियते यदा ।
तदा पूर्वार्थिनः शोकः प्रीतिश्चाप्युत्तरार्थिन ॥२१॥
हेमार्थिनस्तु माध्यस्थ्यं तस्माद वस्तु त्रयात्कम् ।
नोत्पदस्थितिभङ्गानामभावे स्यान्मतित्रयम् ॥२२
न नाशेनबिना शोको नोत्पादेन बिना सुखम् ।
स्थित्या बिना न माध्यस्थ्यं तेन सामान्यतित्यता ॥२३
(मीमांसा श्लोककार्तिक)

२. वीरोदय ९/६ ३. वीरोदय ९/७ ४. वीरोदय ९/८

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

अन्य की भलाई का विचार नहीं कर रहा है। आज तो यह स्वार्थपरायणता रुपी राक्षसी सारे मनुष्य लोक को ग्रस रही है[१] । आज स्त्री जब अपने पति के सिर में सफेदी देखती है, तो उसे ही छोड़ने का विचार करती है। आज का मनुष्य भी किसी अन्य सुन्दरी को देखकर उसे शीघ्र बलात् पकड़कर उसे सेवन कर रहा है[२] । आज जिस मार्ग से अपने वाञ्छित की सिद्धि होती है, संसार उसी मार्ग से जा रहा है, परलोक की कथा तो आज खलता-आकाशलता हो रही है । आज तो जगत् में निरन्तर सींची जाती हुई खलता (दुर्जनता) ही बढ़ रही है। आज का यह मानव स्वयं खीर खाने की इच्छा करते हुए भी दूसरों को चना खाने के लिए उद्यत देखकर उदर पीड़ा से पीड़ित दिखाई दे रहा है। दु:ख है कि आज धरातल पर यह नाम मात्र से नर बना हुआ है[३] । अहो, यह देवतास्थली पशुओं की बलि को धारण कर रही है और श्मसानपने को प्राप्त हो रही है। उन मन्दिरों की देहली निरन्तर अतुल शक्ति से रञ्जित होकर यम स्थली सी प्रतीत हो रही है[४] । कहीं पर कोई सुरा पान करने में संलग्न है तो कहीं पर दूसरा मांस खा खाकर अपने उदर को कब्रिस्तान बना रहा है। कहीं पर कोई मकान के किसी कोने में बैठा हुआ परायी स्त्री को आत्मसात कर रहा है[५] । कहीं पर कोई पराये धन का अपहरण कर रहा है तो कहीं पर कोई अपने झूठ वचन को पुष्ट करने वाले के लिए उपहार दे रहा है। कहीं पर कोई हठात् पर-स्त्री को हर रहा है तो कहीं कोई अपनी उदर की पूर्ति के लिए अपनी जटा फैला रहा है[६] । आज लोग इस संसार में व्यर्थ कल्पना किए गए ईश्वर की सत्ता सिद्ध करने के लिए जैसी शास्त्रार्थ रुप लड़ाई लड़ रहे हैं वैसी लड़ाई तो आज भूमि, स्त्री और धनादि कारणों के लिए नहीं लड़ी जा रही है। यह कैसी विचित्र धारणा है[७] । इस दुर्मोच मोह का विनाश कैसे हो, लोग किस उपाय से उत्पथ त्याग कर सत्पथ पर आवें, कैसे इनमें परस्पर प्रेम की पवित्र भावना जागृत हो, यही मेरी चेतना है[८] । इस चेतना के माध्यम से कवि अपनी भावना व्यक्त कर रहा है।

---

१. वही ९/९ २. वही ९/१० ३. वही ९/१२ ४. वही ९/१३
५. वही ९/१४ ६. वही ९/१५ ७. वही ९/१६ ८. वही ९/१७

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

महाकवि ज्ञानसागर महात्मा गांधी के सत्याग्रह आन्दोलन से प्रभावित थे । निम्नलिखित पद्य से यह बात स्पष्ट होती है -

शपन्ति क्षुद्रजन्मानो व्यर्थमेव विरोधकान् ।
सत्याग्रहप्रभावेण महात्मा त्वनुकूलयेत् ॥ वीरोदय १०/३४

क्षुद्र जन्मा दीन पुरुष विरोधियों को व्यर्थ ही कोसते हैं। महापुरुष तो सत्याग्रह के प्रभाव से विरोधियों को भी अपने अनुकूल कर लेता है ।

महात्मा पद से यहाँ महात्मा गांधी शब्द व्यञ्जित होता है।

कवि के समय दयानन्द सरस्वती के आर्यसमाज का प्रभाव बढ़ रहा था । ईश्वरवाद को आधार बनाकर स्थान-स्थान पर शास्त्रार्थ किए जाते थे। कवि ने ईश्वरवाद की आलोचना की है, किन्तु दयानन्द सरस्वती ने वेद का जो अहिंसापरक अर्थ किया, उसकी प्रशंसा इस प्रकार की है -

स्वामी दयानन्दरवस्तदीयमर्थं त्वहिंसापरकं श्रमी यः ।
कृत्वाद्य शस्तं प्रचकार कार्यं हिंसामुपेक्ष्यैव चरेत्किलार्यः ॥
वीरोदय १८/५७

दयानन्द सरस्वती ने वेद का जो अहिंसापरक अर्थ किया, उसे कवि ने समय का ही प्रभाव माना है । मनुष्य स्वप्न में भी जिस बात का विचार नहीं करता है, समय पाकर वही बात आसानी से सम्पन्न हो जाती है। यदि समय प्रतिकूल है तो मनुष्य निरन्तर प्रयत्न करे, तो भी उसे अभीष्ट फल की प्राप्ति नहीं होती है[१] ।

कवि के समय में दिगम्बर जैनों में ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद जी हुए, उन्होंने विधवा-विवाह का समर्थन किया था । कवि के निम्न पद्य से उनके इस कार्य के प्रति आश्चर्य व्यक्त किया है -

---

१. स्वप्नेऽपि यस्य न करोति नरो विचारं,
सम्पद्यते समयमेत्य तदप्यथाऽरम् ।
कुर्यात्प्रयत्नमनिशं मनुजस्तथापि ,
न स्यात्फलं यदि पल प्रतिकूलताऽऽपि ॥ वीरोदय १८/५८

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

विवर्णतामेव दिशन् प्रजास्वयं निरम्बरेषु प्रविभर्ति विस्मयम् ।
फलोदयाधारहरश्च शीतल प्रसाद एषोऽस्ति तमां भयङ्कर ॥
वीरोदय ९/२२

यह शीतलप्रसाद अर्थात् शीतकाल का प्रभाव बड़ा भयङ्कर है, क्योंकि यह प्रजाओं में विवर्णता को फैलाता हुआ निरम्बरों में विस्मय को उत्पन्न करता हुआ फलोदय के आधारभूत वृक्षों को विनष्ट कर रहा है।

यहाँ कवि ने अपने समय के प्रसिद्ध ब्र. शीतल प्रसाद जी की ओर व्यंग्य किया है, जो कि विधवा-विवाह आदि का प्रचार कर लोगों में वर्ण शङ्करता को फैला रहे थे तथा दिगम्बर जैनों में अति आश्चर्य उत्पन्न कर रहे थे। कवि के अनुसार ये अपने कार्यों से लोगों को धर्म के फल स्वर्ग आदि की प्राप्ति के मार्ग में रोड़ा अटका रहे थे ।

कवि ने अपने समय के पण्डित दरबारी लाल 'सत्यभक्त' की विचारधारा को अनुचित बतलाया है । सत्यभक्त जी प्रारम्भ में जैन धर्म के मूर्द्धन्य विद्वानों में से थे, किन्तु बाद में सर्वज्ञ की विचारधारा तथा कुछ सामाजिक प्रसङ्गों के कारण उन्होंने 'सत्य समाज' नामक प्रथक् सम्प्रदाय की स्थापना की । कवि का शीतवर्णन के प्रसङ्ग में कहना है-

महात्मनां संश्रुतपादपानां पत्राणि जीर्णानि किलेति मानात् ।
प्रकम्पयन्ते दरवारिधारा विभावसुप्रान्तमिता विचाराः ॥
वीरोदय ९/३४

इस शीतकाल में संश्रुत (प्रसिद्धि प्राप्त) वृक्षों के पत्र भी जीर्ण होकर गिर रहे हैं । ऐसा होने से ही मानों दर अर्थात् जरासी जल की धारा लोगों को कँपा देती है तथा इस समय लोगों के विचार हर समय विभावसु (अग्नि) के समीप बैठे रहने के बने रहते हैं।

दूसरा अर्थ यह है कि इस समय प्रसिद्ध आर्षग्रन्थों के पत्र तो जीर्ण हो गए हैं, अतः उसका अभाव सा हो रहा है और लोग पं. दरबारी लाल की विचारधारा से प्रभावित हो रहे हैं और विकारी विचारों को अङ्गीकार कर रहे हैं ।

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

जातिवाद की निस्सारता - महाकवि ज्ञानसागर की विचारधारा जातिवाद के विषय में बड़ी उदार थी । वे प्राणिमात्र को धर्मपालन और धर्मोपदेश सुनने का अधिकारी मानते थे । वीरोदय का सत्रहवाँ सर्ग उनकी इस विचारधारा का पुष्ट प्रमाण है । उनके अनुसार जाति या कुल का गर्व करना व्यर्थ है? सभी मनुष्य अपनी जाति में अपने को बड़ा मानते हैं । मांस को खाने वाला ब्राह्मण निन्द्य है और सदाचारी होने से शूद्र भी वंद्य है । प्राणियों में सम्माननीय वसुदेव राजा ने अपने भाई उग्रसेन की लड़की देवकी से विवाह किया और उसके उदर से जगत्प्रसिद्ध और गुण समृद्ध श्रीकृष्ण नाम के नारायण का जन्म हुआ । वेश्या की लड़की अपने सगे भाई के द्वारा विवाही गयी और अन्त में वह आर्यिका बनी । यह संसार ऐसा ही निन्दनीय है, जहाँ पर कि लोगों के परस्पर में बड़े विचित्र सम्बन्ध होते रहते हैं। इसलिए संसार से विरक्ति ही सारभूत है। आराधना कथाकोश में वर्णित कथा के अनुसार कार्तिकेय स्वामी इसी भूतल पर पिता के द्वारा पुत्री से उत्पन्न हुए और उन्होंने ही यहाँ पर आचार्य पद की प्रतिष्ठा प्राप्त की । यह घटना देखकर जगत् एकनिष्ठ क्यों नहीं होगा ? शिव नाम से प्रसिद्ध रुद्र की और वेद के संग्रहकर्ता पाण्डवों के दादा व्यास ऋषि की उत्पत्ति भी विचारणीय है। ऐसी दशा में जो कोई पुरुष जाति के अभिमान को प्राप्त होता है, उसके साथ बात करने में क्या तथ्य है?

यदि सभी प्राणी ज्ञानगुण से संयुक्त हैं, तब वस्तुतः अनादर के योग्य कौन रहता है? अर्थात् कोई भी नहीं। हाँ पापों में प्रवृति करना अवश्य निन्दनीय है। जो कोई मनुष्य उससे दूर रहता है, वही महान् कहा जाता है[१] । मैं उच्च वंश में उत्पन्न हुआ हूँ, इस प्रकार के अभिमान से जो दूसरे का नाना प्रकार से तिरस्कार करता हैं, वह धर्म का स्वरुप नहीं जानता है, क्योंकि जैन धर्म तो सभी प्राणियों को केवलज्ञान की शक्ति से सम्पन्न कहता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह गर्व से रहित बने और अभिमान से किसी का तिरस्कार न करे। पिता के पक्ष को वंश (कुल) कहते हैं और माता के पक्ष को जाति कहते है, इस विषय में सब एकमत हैं । यदि माता और

---

१. वीरोदय १७/१७-२२

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★
पिता के प्रसङ्ग से ही केवल जाति और कुल की व्यवस्था मानी जाय तो हे विवेकवान् पुरुषों! इस विषय में विचार करो कि माता और पिता इन दोनों की क्रिया क्या सर्वथा एक रुप रहती है? आश्चर्य है कि कितने ही लोग मनुष्यों के समान गाय, भैंस आदि चौपायों में, पक्षियों में और वृक्षों में क्षत्रिय आदि वर्णों की कल्पना करते हैं, किन्तु वे निराधार वचन बोलने वाले हैं, क्योंकि 'क्षत्रियाः क्षतत्राणात्' अर्थात जो दूसरे को आपत्ति से बचावे, वह क्षत्रिय है, इत्यादि आर्षवाक्यों का अर्थ उनमें घटित नहीं होता है।

कुछ लोगों का कहना है कि वर्ण व्यवस्था वर्ण अर्थात् रुप, रंग के आश्रित है, शुक्ल वर्ण वाले ब्राह्मण, रक्त वर्ण वाले क्षत्रिय पीत वर्ण वाले वैश्य और कृष्ण वर्ण वाले शूद्र हैं । यदि वर्ण व्यवस्था रंग पर प्रतिष्ठित है, तो फिर फिरंगी लोगों को ब्राह्मणपना प्राप्त होगा, क्योंकि वे श्वेत वर्ण वाले हैं । काले वर्ण वाले श्री कृष्ण नारायण शूद्रपने का अतिक्रमण नहीं कर सकेंगे । इसके अतिरिक्त ऐसा एक भी घर नहीं बचेगा, जिसमें अनेक वर्ण के लोग न हों अर्थात एक ही माँ बाप की सन्तान गोरी, काली आदि अनेक वर्ण वाली देखी जाती है, तो उन्हें भी आपकी व्यवस्थानुसार भिन्न-भिन्न वर्ण का मानना पड़ेगा। एक माता के उदर से उत्पन्न हुए दशानन और विभीषण में परस्पर कितना अन्तर था ? रावण रामचन्द्र का वैरी, क्रूर और काला था, किन्तु उसी का सगा भाई विभीषण राम का स्नेही, शान्त और गोरा था। एक ही जाति और कुल को मनुष्य की उन्नति या अवनति में साधक या बाधक बताना भूल है। जाति या कुल विशेष में जन्म लेने मात्र से कोई विशेषता कभी भी नहीं कही गयी है, किन्तु मनुष्य का आचरण ही उसके अभ्युदय का कारण है। यदि कहा जाय कि मूषक शूरवीरता की प्रवृति करने पर भी सिंह के समान कभी भी समानता के मूल्य को नहीं प्राप्त हो सकता, इसी प्रकार शुद्र मनुष्य कितना ही उच्च आचरण करे, किन्तु वह कभी ब्राह्मणादि उच्चवर्ण वालों की समता नहीं पा सकता, सो यह कहना भी व्यर्थ है, क्योंकि मूषक और सिंह में तो मूल में ही प्राकृतिक भेद है, किन्तु ऐसा प्राकृतिक भेद शूद्र और ब्राह्मण मनुष्य में दृष्टिगोचर नहीं होता। अतएव जातिवाद को तूल देकर व्यर्थ खेद या परिश्रम से क्या लाभ है?

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर भी अपनी पुत्री के साथ विषय सेवन करने और मनुष्य तक का मांस खाने वाले हुए हैं । इसी प्रकार भील जाति में उत्पन्न हुआ शूद्र पुरुष भी गुरुभक्त, कृतज्ञ और बाण विद्या का वेत्ता दृष्टिगोचर होता है।

प्रद्युम्नचरित में कहा कि कि कुत्ती ने और चाण्डाल ने मुनिराज से श्रावकों के लिए बतलाये गए अणुव्रतादि बारह व्रतों को धारण किया और उनका भली भाँति पालन कर सद्गति प्राप्त की है। मूँग के दानों में घोरडू (नहीं सीझने वाला) मूँग को और पाषाण कणों में हीरा आदि मणि को देखने वाला भी चक्षुष्मान् पुरुष जातीयता के इस प्रकार अभिमान को करता है तो यह उसका कोई दुराग्रह ही समझना चाहिए। जिस बाँस में वंशलोचन उत्पन्न होता है, उसी बाँस में मोती भी उत्पन्न होता है। जिस उग्रसेन महाराज के देवकी जैसी सुशील लड़की पैदा हुई, उसी के कंस जैसा क्रूर पुत्र भी पैदा हुआ । जन्म समय में सर्व जन शूद्र ही उत्पन्न होते हैं, विद्वान् पुरुष का लड़का भी अज्ञ देखा जाता है और अज्ञानी पुरुष का लड़का बुद्धिमान देखा जाता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह जातीयता का अभिमान न करके गुणों के उपार्जन में प्रयत्न करे। श्रीकृष्ण की माता देवकी ने अपने पूर्व जन्म में धीवरी के रुप में क्षुल्लिका के व्रत ग्रहण किये थे और पद्मपुराण में वर्णित अग्निभूति और वायुभूति की पूर्वभव की कथा में एक दीन पामर किसान ने भी मुनि दीक्षा ग्रहण की थी । जैन धर्म की इस उदारता को देखो ।अहिंसा धर्म का हरिषेण कथाकोश में कथानक है कि अहिंसा धर्म को पालन करने के उपलक्ष्य में यमपाश चाण्डाल को राजा ने अपने आधे राज्य के दान पूर्वक अपनी लड़की उसे विवाह दी और उसकी पूजा की । धर्म धारण करने में या आत्म विकास करने में किसी एक व्यक्ति या जाति का अधिकार नहीं है। जो कोई धर्म के अनुष्ठान के लिये यत्न करता है, वह उदार मनुष्य संसार में सबका आदरणीय बन जाता है। यद्यपि वर्तमान में सर्व जीवों की अवस्था तुल्य नहीं है, किन्तु आज हम संसार में जिस अवस्था को धारण कर रहे हैं, उस अवस्था को भविष्य में दूसरे लोग भी धारण कर सकते हैं और जिस अवस्था को आज दूसरे लोग प्राप्त हैं, उसे

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

हम कल भी प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि कर्म के उदय से जीव की दशा कभी एक सी नहीं रह पाती, हमेशा परिवर्तन होता रहता है, इसलिए मनुष्य को अपनी वर्तमान उच्च जाति या कुलादि का गर्व नहीं करना चाहिए[१] ।

जो विद्युच्चर अपने जीवन के पूर्व समय में चोर रुप में निन्द्य था, वही पीछे जगत् का वन्दनीय महापुरुष बन गया और जो महापुरुषों का शिरोमणि चारुदत्त सेठ अपनी विवाहिता कुल स्त्री के सेवन की भी इच्छा नहीं करता था, वही पीछे वेश्यासेवी हो गया[२] । यह तुच्छ, यह महान् है, ऐसा सोचना व्यर्थ है, क्योंकि अपने कार्य में किसका गुण प्रतीत नहीं होता ? कैंची से सुई छोटी है, पर सुई का कार्य कैंची से नहीं हो सकता, इसलिए छोटे और बड़े की कल्पना करना व्यर्थ है[३] । पाप को छोड़कर मनुष्य पवित्र कहला सकता है । कीट कालिमा से विमुक्त होने पर ही सुवर्ण सम्माननीय होता है । अतः पाप से घृणा करना चाहिए, पापियों से नहीं[४] ।

महाकवि ज्ञान सागर का मानवतावादी दृष्टिकोण - जो दूसरे सज्जन पुरुष की बात का सम्मान करता है, उसकी छोटी सी भी भली बात को बड़ी समझता है, वही वास्तव में आज मनुष्यता को धारण करता है। जो औरों को तुच्छ समझता है, उनकी ओर देखता भी नहीं है, स्वयं अहंकार में मग्न रहता है, क्या उसे कोई देखता है? नहीं। क्योंकि वह लोगों की दृष्टि से गिर जाता है। अत: दूसरों का सम्मान करना ही आत्म उत्थान का मार्ग है[५] । आत्महित के अनुकूल आचरण का नाम ही मनुष्यता है केवल अपने सुख में प्रवृत्ति का नाम मनुष्यता नहीं है। जैसा अपनी आत्मा है, वैसा ही दूसरे का भी समझना चाहिए। अत: विश्व भर के प्राणियों के लिए हितकारक प्रवृत्ति करना ही मनुष्य का धर्म है[६] । अपने से वृद्धजनों के साथ अनुकूल आचरण करें, अपने से छोटों को अपने समान तन-मन धन से सहायता पहुँचावें, किसी भी मनुष्य को दूसरा न समझें । सभी को अपना कुटुम्ब मानकर उनके साथ उत्तम व्यवहार करें । इस प्रकार उदार मनुष्य सच्ची मानवता प्राप्त करे[७]। दूसरे के दोष को कभी प्रकट न करे, उसके विषय में मौन धारण करे,

१. वीरोदय १७/२३-४१ २. वही १७/२ ३. वही १७/३
४. वही १७/७ ५. वही १७/५ ६. वही १७/६
७. वही १७/८

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

अपनी वृत्ति से दूसरे का पालन पोषण करे, दूसरे के गुणों का ईर्ष्या रोगादि से रहित होकर अनुसरण करे और इस प्रकार सच्ची मनुष्यता को प्राप्त हो[1]। जिस पुरुष ने मानवता का आश्रय लिया अर्थात् सत्कार किया, उसने मानवता का आदर किया तथा जिसने पूज्य पुरुषों में अभिमान रहित होकर व्यवहार किया, उसने वास्तविक मानवता प्राप्त की[2] ।

भद्रोदय अथवा समुद्रदत्त चरित्र

भद्रोदय अथवा समुद्रदत्त चरित्र नवसर्गात्मक, संस्कृत भाषा में निबद्ध एक खण्ड काव्य है । इसमें महाकवि ज्ञानसागरजी ने सत्यव्रत की रक्षा करने का उपदेश दिया है । उनका कहना है कि सत्य के द्वारा ही संसार में प्रतिष्ठा होती है, सत्य से लक्ष्मी विशिष्ट होती है, सत्य से वाणी की सफलता है, सत्य सब प्रकार से बहुत अच्छा है[3] । सम्पूर्ण कथा वस्तु इस प्रकार है -

इसी भरत क्षेत्र में श्रीपद्मखण्ड नाम का नगर है, वहाँ पर सुदत्त नाम का वैश्य था और उसकी स्त्री का नाम सुमित्रा था । उन दोनों के भद्रमित्र नाम का पुत्र हुआ, जो कि शुद्ध चित्त का धारक था । एक बार उसने अपने मित्रों से सुना कि पिता के कमाए हुए पदार्थों से अपना निर्वाह करना उचित नहीं, किन्तु स्वयं कुछ व्यवसाय करना चाहिए । यह बात सुनकर किसी दूसरे ने कहा कि आपकी बात तभी मानी जा सकती है, जब आप इस बात को किसी कथा के द्वारा पुष्ट करें । उसने कथा कही -

विजयार्द्ध पर्वत के उत्तर की ओर की नगरियों में एक अलका नगरी है । उस नगरी का राजा महाकच्छ था । उसके दामिनी नामक रानी थी। इन दोनों के प्रियङ्गुश्री नाम की लड़की थी । वह अतिशय रुपवती थी । किसी ज्योतिषी ने बतलाया कि वह स्तवकगुच्छ नगर के राजा की रानी बनेगी। उस राजा का नाम ऐरावण है । महाकच्छ राजा अपने मायामयी घोड़े को लेकर उसके नगर की ओर आया । उस घोड़े की यह विशेषता थी कि

---

१. वही १७/९ २. वही १७/१२

३. सत्येन लोके भवति प्रतिष्ठा सत्येन लक्ष्मी भवताद्वि शिष्टा ।
सत्येन वाचः सफलत्वमस्तु सत्यं समन्तान्महदस्ति वस्तु ॥ भद्रोदय १/८

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

जो भी कोई उस पर बैठता, वह शीघ्र ही नीचे गिर जाता था । ऐरावण राजा के द्वारा सवारी करते ही वह घोड़ा सीधा हो गया । इस प्रकार ऐरावण को विशिष्ट पुण्यशाली जानकर महाकच्छ ने उससे अपनी पुत्री के साथ विवाह का आग्रह किया । ऐरावण के कहने पर अपने नगर से वह पुत्री को ला रहा था । मार्ग में उसे वज्रसेन नामक व्यक्ति मिला । वह उस लड़की से स्वयं विवाह करना चाहता था । ऐरावण को जब यह पता चला तो उसने वज्रसेन को जीतकर लड़की से स्वयं विवाह कर लिया । इस बात का प्रभाव यह हुआ कि वज्रसेन ने जिनदीक्षा ले ली और ऊपरी रुप से तप करने लगा। इस प्रकार वह एक बार स्तवकगुच्छ नगर के बाहर बैठा था कि क्रोध में भरे हुए लोगों ने उसे मारना शुरु कर दिया । इससे कुद्ध होकर उस मुनि ने अपने बायें कन्धे से निकले तैजस पुतले से पहले उस सारे नगर को जलाया और बाद में स्वयं भी भस्म होकर नरक गया । इसी प्रकार आजीविका रहित गृहस्थ भी चिन्ता से जलता हुआ सबको सताने वाला होकर नरक में पड़ता है ।

इस वृत्तान्त को सुन भद्रमित्र अपने माता-पिता की अनुमति लेकर रत्नद्वीप पहुँचा और वहाँ उसने सात रत्न प्राप्त किए । इसके पश्चात् वह सिंहपुर पहुंचा । वहाँ का राजा सिंहसेन, रानी रामदत्ता तथा मन्त्री श्रीभूति था । श्रीभूति अपने आपको सत्यवादी कहता था । उसने अपने गले में एक छुरी बाँध रखी थी कि यदि कभी उसके मुँह से असत्य बात निकली तो वह उसी छुरी से आत्मघात कर लेगा । इसी कारण राजा ने उसे सत्यघोष कहा था। भद्रमित्र सत्यघोष को अपने सात रत्न सौंपकर माता-पिता को लेने चला गया, क्योंकि वह सिंहपुर में ही रहना चाहता था ।

सिंहपुर लौटने पर सत्यघोष ने भद्रमित्र के रत्न नहीं लौटाये । सत्यघोष का विश्वास कर उसे पहरेदारों ने पागल कहकर बाहर निकाल दिया । दु:खी होकर वह रोज ठीक समय पर पेड़ पर चढ़कर अत्यन्त दीन और करुण स्वर में कहा करता था कि श्रीभूति पुरोहित ने उसके रत्न ले लिए। एक बार रानी ने उसकी आवाज पर ध्यान देकर उसे बुलाया और सारी जानकारी की वास्तविकता का पता लगाने के लिए राजा की आज्ञा से उसने

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

श्रीभूति पुरोहित के साथ शतरंज खेलकर शीघ्र ही उसकी छुरी, जनेऊ तथा मुद्रिका जीत ली । उन तीनों वस्तुओं के साथ उसने अपनी दासी को सत्यघोष के घर भेजा । दासी तीनों चीजें दिखलाकर सत्यघोष की स्त्री से रत्नों की पिटारी ले आयी । राजा ने उन रत्नों में और रत्न मिलाकर उनमें से अपने रत्न उठाने हेतु भद्रमित्र से कहा । भद्रमित्र ने अपने रत्न उठा लिए। राजा बहुत सन्तुष्ट हुआ । उसने भद्रमित्र को राजश्रेष्ठी बना लिया और सत्यघोष को कठोर दण्ड देकर धम्मिल्ल नाम के व्यक्ति को अपना मन्त्री बनाया । राजा के द्वारा अपमानित होकर दुःखी हो सत्यघोष मृत्यु को प्राप्त हो राज भण्डार में सर्प हुआ । आगे उसे नाना कुयोनियों नें जन्म लेना पड़ा और सिंहचन्द्र, रामदत्ता, भद्रमित्र आदि सदाचरण के द्वारा सद्गति को प्राप्त हुए। इनकी विस्तृत कथा भद्रोदय में दी हुई है ।

अष्टम सर्ग मे यह बात विस्तृत रुप से बतलायी गयी है कि इस आत्मा को जन्म और मरण क्यों करना पड़ता है और उनसे यह किस तरह छूट सकता है ।

नवम सर्ग में मुनिचर्या का वर्णन है ।

श्रीभूति पुरोहित की कथा का सङ्केत भगवती आराधना में इस प्रकार हुआ है -

परदव्वहरणबुद्धी सिरिभूदी णयरमज्झयारम्मि ।
होदूण हदो पहदो पत्तो सो दीह संसारं ।।८७४।।

अर्थात् दूसरे का धन हरण करने की जिसकी बुद्धि है, ऐसा श्रीभूति नगर के मध्य नाना वेदनाओं से ताड़ित तथा अनेक प्रकार के दुःखो से मरकर दीर्घ संसार में परिभ्रमण को प्राप्त हुआ ।

इसकी संक्षिप्त कथा प्रभाचन्द्र कृत आराधना कथा प्रबन्ध में आयी है। भद्रोदय की कथा से उसका अन्तर यह है कि आराधना कथा प्रबन्ध में समुद्रदत्त अपनी माँ तथा पत्नी को सिंहपुर लाया तथा उसने पाँच रत्न श्रीभूति पुरोहित के पास धरोहर के रुप में रख दिए । समुद्रदत्त अपने पिता के साथ रत्नद्वीप व्यापार करने चला गया । द्रव्योपार्जन कर जब वे लौट रहे थे तो

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

समुद्र के मध्य जहाज टूटने से समद्रदत्त के पिता सुमित्र की मृत्यु हो गयी। समुद्रदत्त जहाज के तख्ते के सहारे तैरता हुआ सिंहपुर आया और अपनी पत्नी तथा मां के साथ जाकर उसने श्रीभूति से रत्न माँगे, शेष कथा प्राय: एक जैसी है ।

समुद्रदत्त की कथा हरिषेणकृत बृहत्कथा कोश एवं ब्रह्मनेमिदत्त कृत आराधना कथा कोश में भी आयी है । इनके वैशिष्ट्य के विषय में डां. किरण टण्डन ने अपने शोध प्रबन्ध 'महाकवि ज्ञानसागर के काव्य एक अध्ययन' में प्रकाश डाला है ।

भद्रोदय की शैली सरल,स्वाभाविक मनोरम और प्रवाह पूर्ण है । अष्टमसर्ग में धर्मोपदेश का सार भरा हुआ है । बहुत से सरल शब्दों में संसार और मोक्ष की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला है । इसके विषय में पं. विद्याकुमार सेठी ने ठीक ही कहा है -

'यह ग्रन्थ खाँड की रोटी के समान मधुर एवं रसपूर्ण है । संस्कृत के सहृदय महानुभावों के लिए तो यह अलंकारपूर्ण रसास्वाद दायी देन है ही, किन्तु हिन्दी के जानने वाले भी सज्जन जिस दृष्टिकोण से इस ग्रन्थ का आस्वादन करेंगे, उन्हें उसी धारा में अनुपम आनन्द की प्राप्ति होगी।'

सुदर्शनोदय - चम्पापुर में धात्रीवाहन नामक राजा हुआ, उनकी अभयमती नामक रानी थी । उस नगर में श्रेष्ठिवर्य वृषभदास रहते थे । उनकी सेठानी का नाम जिनमती था । एक बार सेठानी ने पाँच उत्तम स्वप्न देखे । उन स्वप्नों के फल के विषय में सेठ, सेठानी ने मुनिराज से पूछा । मुनिराज ने उत्तर दिया कि उन दोनों के यहाँ उत्तम पुत्र उत्पन्न होगा । नव मास बीत जाने पर पुत्र उत्पन्न हुआ । उसका नाम सुदर्शन रखा गया । बालक क्रमश: बढकर युवा हुआ । वह यथा नाम तथा गुण था । उसका सागरदत्त नामक सेठ की पुत्री मनोरमा से विवाह हुआ । एक बार नगर में एक मुनि महाराज आए । उनका उपदेश सुनकर सुदर्शन को वैराग्य हुआ, किन्तु मनोरमा के प्रति स्नेह के कारण वह घर बार नहीं छोड़ सका । इसका कारण उसने मुनि से पूछा । मुनि महाराज ने उत्तर दिया कि पूर्वभव में तुम एक बार विन्ध्याचल के निवासी भील थे और मनोरमा तुम्हारी गृहिणी थी । तुम दोनों

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★
निरन्तर जीव बध करके अपना जीवन पाप से परिपूर्ण बिता रहे थे । भील की पर्याय से तुम्हारा जीव अगले भव में कुत्ता हुआ । कुछ शुभ होनहार से वह कुत्ता किसी जिनालय के सामने मरा और किसी ग्वाले के यहाँ पुत्र हुआ ।

एक बार सरोवर में से सहस्त्रपत्र वाले कमल को तोड़ते हुए उस ग्वाले ने यह आकाशवाणी सुनी कि वत्स ! यह सहस्त्रदल कमल किसी बड़े पुरुष को समर्पित करना, स्वयं उपभोग न करना । ग्वाले के लड़के ने सेठ वृषभदास को बड़ा आदमी समझकर उन्हें वह कमल भेंट किया, किन्तु सेठ ने कहा कि मुझसे बड़े तो इस नगर के राजा हैं, उन्हें यह देना चाहिए । यह कहकर सेठ उस लड़के साथ राजा के पास गया । तब राजा ने कहा कि मेरे से ही क्या सारे त्रैलोक्य में बड़े तो जिनराज हैं, यह उन्हें ही समर्पित करना चाहिए । यह कहकर उन दोनों के साथ राजा जिनालयपहुँचे । वहाँ पहुँचकर राजा ने बड़े महोत्सव के साथ उस गोप बालक के हाथ से वह सहस्त्रदल कमल जिनराज को समर्पण करवा दिया । वह गोप बालक सेठ के यहाँ काम करने लगा । एक बार किन्हीं मुनि महाराज को एक वृक्ष के नीचे ध्यान लगाए हुए देखकर वह सारी रात उनकी शीत बाधा को दूर करने के लिए आग जलाता हुआ बैठा रहा । प्रातःकाल उसे निकट भव्य समझकर णमो अरिहन्ताणं इस मन्त्र को दिया और कहा कि इस मन्त्र का स्मरण करते हुए प्रत्येक कार्य को करना । वह बालक प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में उस मन्त्र को जपने लगा । एक दिन वन में जब वह गाय भैंसों को चराने गया था तो एक भैंस सरोवर में घुस गई । उसे निकालने के लिए वह उक्त मन्त्र के स्मरण पूर्वक सरोवर में कूदा । पानी के भीतर पड़े हुए तीक्ष्ण काष्ठ के आघात से वह मृत्यु को प्राप्त होकर सेठ वृषभदास के यहाँ सुदर्शन नाम का पुत्र हुआ ।

यद्यपि सुदर्शन नाम वाले तुम्हे आज वैराग्य नहीं हो रहा है, तथापि तुम इसी भव से मोक्ष जाओगे ।

उस भील की भीलनी मरकर भैंस हुइ । पुनः वह भैंस मरकर इसी नगर की धोबी की लड़की हुई । पुण्य योंग उसका आर्यिका संघ के साथ

समागम हुआ, जिसका परिणाम यह हुआ कि वह क्षुल्लिका बन गयी । जो धोबिन पहिले जल से लोगों के वस्त्रों को धो धोकर स्वच्छ किया करती थी वह क्षुल्लिका बनकर ज्ञानरुप जल के द्वारा अपने मन के मैल को धो धोकर उसे निर्मल बनाने को उद्यत रहती थी । वही क्षुल्लिका मरकर मनोरमा हुई है । मुनिराज के वचन सुन मनोरमा और सुदर्शन आपस में प्रेम पूर्वक रहकर पुण्य कार्यों को सम्पादित करते हुए जीवन बिताने लगे ।

एक बार सेठ सुदर्शन पूजा कर वापिस लौट रहे थे कि कपिला ब्राह्मणी की नजर उन पर पड़ गयी । उनके रुप सौन्दर्य से आकृष्ट हो कामपीड़ित होती हुई उसने दासी के द्वारा अपने पति के रोगपीड़ित होने का बहाना बनाकर बुला लिया और उनके पास कामचेष्टायें करने लगी । सुदर्शन उसकी चेष्टायें देखकर हतप्रभ रह गए । उन्होंने कहा कि मैं तो नपुंसक हूँ, स्त्रियों के लिए किसी भी काम का नहीं हूँ । यह सुनकर कपिला ने उसे छोड़ दिया ।

एक बार वसन्त ऋतु में मनोरमा और उसके पुत्र को उद्यान में देखकर कपिला ने रानी से पूछा कि यह स्त्री और पुत्र किसका है ? रानी ने कहा कि यह सेठ सुदर्शन की सेठानी है और यह इसका पुत्र है । कपिला समझ गई कि सेठ ने उसे धोखा दिया है । उसने रानी को उसके प्रति अनुरक्त कर दिया । रानी ने पण्डिता दासी के द्वारा सेठ सुदर्शन को बलात् अपने महल में प्रविष्ट करा लिया । सेठ सुदर्शन कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को श्मसान में जाकर ध्यान लगाया करते थे । उसी ध्यानमुद्रा में दासी उन्हें उठाकर महल में ले आयी । रानी ने उन्हें रिझाने के सब प्रयत्न किए । अन्त में जब प्रात: काल होने लगा और सेठ के मन में किंचित भी विकार नहीं हुआ तो रानी जोर जोर से चिल्लाने लगी कि इसने मेरे शीलभङ्ग का प्रयास किया है । उसकी बात सुनकर सुभ पकड़कर सेठ सुदर्शन को राजा के पास ले गए । राजा ने सेठ को शूली पर चढ़ाने का आदेश दे दिया । चाण्डाल द्वारा वध स्थान पर तलवार का प्रहार किए जाने पर भी सेठ के ऊपर कुछ भी असर नहीं हुआ । अन्त में उसे मारने हेतु राजा स्वयं तलवार लेकर उद्यत हुआ । तभी आकाशवाणी हुई कि अपनी स्त्री में सन्तुष्ट रहने वाला यह सुदर्शन निर्दोष है और जितेन्द्रिय है । राजा को अपनी भूल ज्ञात हुई,

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

उसने चरणों में पड़कर सेठ से क्षमा याचना की । सुदर्शन संसार से विरक्त हो मुनि बन गए, मनोरमा आर्यिका हो गयी । अभयमती अपना भेद खुल जाने से अपघात कर मृत्यु को प्राप्त हो पहले के किसी शुभ भाव से व्यन्तरी हुई ।

मुनि अवस्था में पण्डिता दासी के कहने से देवदत्ता नामक वेश्या ने भी उसे मोहित करना चाहा । सुदर्शन मुनि के धर्मोपदेश से वेश्या ने आर्यिका के व्रत लिए । एक बार श्मसान में ध्यानारुढ सुदर्शन मुनि को देखकर अभयमती के जीव व्यन्तरी ने उन पर घोर उपसर्ग किए, किन्तु वह उन्हें किंचित भी विचलित न कर सकी । ध्यान के बल से सुदर्शन को केवल ज्ञान हो गया। बाद में वे मोक्ष गए । सेठ सुदर्शन के इस वृत्तान्त से यह ज्ञात होता है कि धर्म किसी व्यक्ति विशेष की बपौती नहीं, इसका आचरण कोई भी कर सकता है । अरहन्त भगवान् के मन्त्र का ध्यान करने से ग्वाले का लड़का सेठ सुदर्शन हुआ और उसने अपने पुरुषार्थ से मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति की । धोबिन ने भी क्षुल्लिका के व्रत धारण किए और वह मरकर मनोरमा नामक सेठानी हुई । कुत्ती भी जिनमन्दिर के सामने मरकर शुभ भावों से धोबिन हुई । पतित जीवन देवदत्ता वेश्या ने भी मुनिराज सुदर्शन के उपदेश से प्रभावित होकर आर्यिका के व्रत ग्रहण किए । शुभ संकल्प को पूरा करने हेतु व्यक्ति को कठोर उपसर्ग सहन करने पड़ते हैं । जैसे सोना अग्नि में पककर खरा उतरता है, उसी प्रकार कष्ट सहकर भी आत्मा का उत्कर्ष करना चाहिए, यह शिक्षा हमें सेठ सुदर्शन के जीवन वृत्त से प्राप्त होती है ।

सुदर्शनोदय सेठ सुदर्शन के ही जीवन चरित पर लिखा गया उत्तम काव्य है । इसकी रचना संस्कृत पद्य में हुई है । यह नवसर्गात्मक है । काव्य के साथ उपदेश इस प्रकार ग्रथित किए गए हैं, जैसे सूत्र में मणिगण पिरोए हुए रहते हैं । काव्य के वैभव को प्रदर्शित करने के साथ इस रचना का उद्देश्य संसार के प्राणियों को लौकिक कामनाओं से हटाकर मोक्ष की शिक्षा देना है । इस दृष्टि से यह एक सफल काव्य है । काव्य मर्मज्ञों ने इसके वैभव के गीत गाए हैं । पं. गोविन्द नरहरि वैजापुरकर एम. ए. न्याय, वेदान्त, साहित्याचार्य, सम्पादक सूर्योदय ने इसके विषय में कहा था -

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

"नो सर्गों वाला यह काव्य चम्पापुरी के सुदर्शन सेठ का चरित वर्णन करता हुआ जिनोपदिष्ट मोक्षलक्ष्मी का पोषण करता है । प्रस्तुत काव्य के धीरोदात्त नायक की ऐसी कौतूहल जनक कथा वस्तु कवि ने अपनी कविता के लिए चुनी है कि वह इस काव्य के आद्योपान्त पढ़ने की उत्सुकता को शान्त नहीं करती, प्रत्युत उत्तरोत्तर प्रतिसर्ग वह बढ़ती ही जाती है । प्रसन्न और गम्भीर वैदर्भी रीति से प्रवहमान इस सरस्वती नदी के प्रवाह में सहृदय पाठकों के मन रुप मीन विलासपूर्वक उद्वर्तन निवर्तन करने लगते हैं । अनुप्रास, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा और विरोधाभास आदि अलङ्कार इसे विशेष रुप से उज्जवल और विभूषित करते हैं । श्यामकल्याण, कव्वाली, प्रभातीं, सारंग, काफी इत्यादि रागों की सुन्दर ध्वनि उसकी स्वाभाविक सुन्दरता को दुगुणी करती हुई अन्य काव्यों में दुर्लभ ऐसे दिव्य संगीत को रचती है । महाकाव्य के अनुकूल नगर वर्णन, नायिका-वर्णन, विलास-वर्णन, निसर्ग-वर्णन आदि गुण भी सहज रुप से इस काव्य में यथास्थान प्रसङ्ग के अनुसार गूँथे गए हैं । महाकाव्य के होते हुए भी इसमें जैन आचार और दर्शन रुप समुद्र के मंथन से उत्पन्न नवनीत (मक्खन) ऐसी कुशलता से समालिम्पत है कि जिससे इस काव्य की कान्ता सम्मित सुन्दर उपयोगित मूर्तिमती होकर दिखायी देती है । यह काव्य केवल दर्शन शास्त्र ही नहीं है, बल्कि भगवान् जिनराज का धर्मशास्त्र भी है, जिसे कि कवि ने मोक्षमार्ग पर चलने वाले मुनि और श्रावकादि के उद्देश्य से निर्माण किया है[१] ।"

सुदर्शनोदय के सम्पादकीय में पण्डित हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री लिखते हैं- "संस्कृत वाङ्मय में जैन एवं जैनेतर विद्वानों के द्वारा जितने भी काव्यग्रन्थ रचे गए हैं, उनमें भी प्रस्तुत सुदर्शनोदय की रचना के समान अन्य रचनायें बहुत ही कम दृष्टिगोचर होती हैं ।संस्कृत भाषा के प्रसिद्ध छन्दों में रचना करना बहुत बड़े पाण्डित्य का कार्य है । उसमें भी हिन्दी भाषा के अनेक प्रसिद्ध छन्दों में एवं प्रचलित राग-रागिनियों में तो संस्कृत काव्य की रचना करना और भी महान् पाण्डित्य की अपेक्षा रखता है । हम देखते हैं कि मुनि श्री को अपने इस अनुपम प्रयास में पूर्ण सफलता मिली है और उनकी

---

१. सुदर्शनोदय - आमुख पृ. १०-११

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

प्रस्तुत रचना से संस्कृत वाङ्मय की और भी अधिक श्रीवृद्धि हुई है । जहाँ तक मेरी जानकारी है, इधर पांच सौ वर्षों के भीतर ऐसी सुन्दर और उत्कृष्ट काव्य रचना करने वाला अन्य कोई विद्वान जैन सम्प्रदाय में नहीं हुआ है। ऐसी अनुपम रचना के लिए जैन सम्प्रदाय ही नहीं, सारा भारतीय समाज मुनिश्री का ऋणी है ।

सुदर्शनोदयकार को अन्त्य अनुप्रास रखने के लिए कितने ही स्थलों पर अनेक कठिन और अप्रसिद्ध शब्दों का प्रयोग करना पड़ा है । जैसे- प्रथम सर्ग के सातवें श्लोक में 'गणु' शब्द के साथ समानता रखने के लिए पणु शब्द का प्रयोग किया है । बहुत कम ही विद्वानों को ज्ञात होगा कि पणु शब्द नपुंसकार्थक है । विश्वलोचन कोष में पणु: षण्ढे शब्द पाया जाता है । ग्रन्थकार ने अपनी प्राय: सभी रचनाओं में इसी कोष गत शब्दों का प्रयोग किया है । इसी प्रकार लोग 'तल्प' शब्द के 'शय्या' अर्थ से ही परिचित हैं, पर यह शब्द स्त्रीवाचक भी है, यह इसी कोष से प्रमाणित है । इसलिए विद्वानों को यदि किसी खास शब्द के अर्थ के विषय में कुछ सन्देह प्रतीत हो तो उसके अर्थ का निर्णय वे उक्त कोष से करें ।

प्रस्तुत काव्य के निर्माता ने हमें बताया कि पंचम सर्ग के प्रारम्भ में जो प्रभाती दी गई है, उसके प्रथम चरण के 'अहो प्रभातो जातो भ्रातो' वाक्य में प्रभात शब्द के नपुंसक लिंग होते हुए भी भ्रातृ शब्द के पुल्लिंग होने के कारण एक सा अनुप्रास रखने के लिए उसे पुर्ल्लिंग रुप से प्रयोग करना पड़ा है । इसी प्रकार अनुप्रास के सौन्दर्य की दृष्टि से सुन्दर, उत्तर और मधुर आदि शब्दों के स्थान में क्रमश: सुन्दल, उत्तल और मधुल आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है, क्योंकि संस्कृत साहित्य में र के स्थान पर ल और ल के स्थान में र का प्रयोग विधेय माना गया है[२] ।

मुनिमनोरञ्जनाशीति - यह एक मुक्तक काव्य है। इसमें दिगम्बर मुनि एवं आर्यिका की चर्या एवं विशेषतायें वर्णित हैं ।

सम्यक्त्वसारशतक - जैनदर्शन में सम्यक्त्व का अत्यधिक महत्व है । सम्यक्त्वी कैसा होता है, इसका वर्णन इस कृति में सरल भाषा में किया गया है। इसमें २०० पद्य हैं ।

---

२. वही प्रस्तावना पृ. ५-७

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

प्रवचनसार प्रतिरुपक - आचार्य कुन्दकुन्द प्रणीत प्रवचनसार की गाथाओं के भावों को ग्रहण कर आचार्य ज्ञानसागर जी ने संस्कृत के अनुष्टुप् छन्द तथा हिन्दी पद्य में इसे निबद्ध किया है । गद्य में सारांश भी लिखा है ।

हिन्दी रचनायें

कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन - कर्तव्य पथ प्रदर्शन आचार्य ज्ञानसागर महाराज की हिन्दी भाषा में सरल एवं सुबोध रचना है । यह पुस्तक यथानाम तथा गुण है । इसमें मनुष्य की सफलता, सत्संगति का सुफल, सुभाषित, व्यर्थवादी की दुर्दशा, सत्साहित्य का प्रभाव, साधु समागम, सकामता के साथ निष्कामता का संघर्ष, लक्ष्मी का पति, मनोबल, मन की एकाग्रता, बाल जीवन की विशेषता, दया की महत्ता, विवेक, अभिमान, परिस्थिति की विषमता, स्वार्थ परता, श्रावक की सार्थकता, उपासक का प्रशम भाव, संवेगभाव, करुणा का स्रोत, आस्तिक्य भाव, महानुभूति, हिंसा का स्पष्टीकरण, विचार, अहिंसा की आवश्यकता, औरों को सुधारने में अपनी भलाई, जैन वीरों की देशभक्ति, जैन कौन होता है, राम और रावण, कुलक्रम की अनिश्चितता, एक भील का अटल संकल्प, राजनीति और धर्मनीति हिंसा के रुपान्तर, अहिंसा का महात्म्य, सत्य की पूजा, सत्यवादी के स्मरण रखने योग्य बातें, सत्य परमेश्वर है, अदत्तादान, काम पर विजय श्रेयस्कर, विवाह की उपयोगिता, विवाह का मूल उद्देश्य, गरीब कौन? पाप की जड़ परिग्रह, न्यायो पात्त धन, दूसरे की कमाई खाने का निषेध, न्यायोचित वृत्ति, महाराज राममिंह, शिल्पकला, व्यापार, उदारता, पशुपालन, अन्याय के धन का दुष्परिणाम, साधक का कार्यक्षेत्र, व्यर्थ के पाप, कर्त्तव्य और कार्य, अनर्थदण्ड के प्रकार, मानवपन, शाकाहार, दूध का उपयोग, नशेबाजी से दूर, रात्रि भोजन निषेध, शरीर का महत्व, दान, समाधिमरण और मौत जैसे लोकोपयोगी विषयों पर सोदाहरण प्रकाश डाला गया है।

उदाहरणार्थ सहानुभूति के विषय में आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने कहा है -

दृष्टिपथ में आने वाले शरीरधारियों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं (1) मनुष्य (2) पशु-पक्षी । इनमें से पशु-पक्षी वर्ग की अपेक्षा

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

आम तौर पर मनुष्य वर्ग अच्छा समझा जाता है? सो क्यों? बात यह है कि मनुष्य में सहानुभूति होती है, जिसका पशु-पक्षियों में अभाव होता है। पशु को जब भूख लगती है तो खाना चाहता है और खाना मिलने पर पेट भर खा लेता है । उसे अपने पेट भरने से काम रहता है । उसे अपने साथियों की कुछ फिकर नहीं होती । उसकी निगाह में उसका कोई साथी ही नहीं होता, जिसकी कि वह अपने विचार में कुछ भी अपेक्षा रखे । मनुष्य का स्वभाव इससे कुछ भिन्न प्रकार का होता है । वह अपनी तरह से अपने साथी की भी परवाह करना जानता है । यदि खाना मिलता है तो अपने साथी को खिलाकर खाना चाहता है । वस्त्र भी मिलता है तो साथी को पहिनाकर फिर आप पहिनना ठीक समझता है । आप भले ही थोड़ी देर के लिए भूखा रह सकता है, परन्तु अपने साथी को भूखा रखना या रहने देना इसके लिए अनहोनी बात है । बस इसी का नाम सहानुभूति है । जिसके बल पर मनुष्य सबका प्यारा और आदरणीय समझा जाता है । मनुष्य में सहानुभूति न हो तो वह पशु से भी भयंकर बन जाता है । क्रूर से क्रूर सिंह भी प्रजा में इतना विप्लव नहीं मचा सकता, जितना कि सहानुभूति से शून्य होने पर एक मनुष्य कर जाता है । सिंह तो क्रूरता में आकर दो चार प्राणियों का संहार करता है, किन्तु जब मनुष्य सहानुभूति त्यागकर एकांत स्वार्थी बन जाता है तो वह सैकड़ों हजारों आदमियों का संहार कर डालता है । कपट वचन के द्वारा लोगों को भ्रम में डालकर बरबाद कर देता है। लोगों की प्राणों से प्यारी जीवन निर्वाह योग्य सामग्री को भी लूट खसोट कर उन्हें दु:खी बनाता है । मनचले पन में आकर कुलीन महिलाओं पर बलात्कार कर उनके शील रत्न का अपहरण करता है । भूतल पर होने वाले खाद्य पदार्थ वगैरह पर अपना ही अधिकार जमाकर सम्पूर्ण प्रजा को कष्ट में डाल देता है[१] ।

---

१. कर्त्तव्यपथ प्रदर्शन पृ.२८,२९

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

तत्त्वार्थसूत्र टीका

आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने तत्त्वार्थसूत्र की महत्त्वपूर्ण टीका लिखी है । इसकी प्रारम्भिक प्रस्तावना में ग्रन्थकर्त्ता आचार्य उमास्वामि का परिचय दिया गया है । तत्त्वार्थ सूत्र पर तत्त्वार्थाधिगम भाष्य मिलता है, जिसे श्वेताम्बर मतानुयायी स्वोपज्ञ कहते हैं । उनका कहना है कि भाष्य में कई जगह वक्षाम: वक्षामि इत्यादि उत्तमपुरुष वाचक क्रियायें हैं, अत: यह स्वोपज्ञ है। उनका ऐसा कहना निर्दोष नहीं है, क्योंकि जैसे ही उत्तम पुरुषात्मक क्रियाओं का प्रयोग है, वैसे ही कहीं कहीं पर भाष्य में अन्य पुरुष की क्रिया भी आई है । जैसे द्वितीय अध्याय के आहारक शरीर का वर्णन करने वाले भाष्य में 'कार्मणमेषां निबन्धन माश्रयो भवति तत्कर्मत एवं भवतीति बन्धेषु (प) रस्ताद्वक्ष्यति' ऐसा पाठ है ।

भाष्य सम्भत सूत्र पाठ में तथा भाष्य में भी स्वर्ग बारह ही हैं, इत्यादि दो चार बातों के सिवाय अधिकांश बातों में दिगम्बर सिद्धान्त का ही समर्थन किया गया है । जैसे कि षोडश कारण भावनाओं के नाम? सात तत्त्वों की मान्यता आदि । आचार्य ज्ञानसागर महाराज का कहना है कि उमास्वामि महाराज न तो कट्टर दिगम्बर आम्नायी ही थे व श्वेताम्बर ही थे और न यापनीय ही थे। वे तो श्रीमहावीर स्वामी के पथ पर चलने वाले अचेल व्रत के धारक सच्चे सन्तोषी साधु थे । क्योंकि उन्होंने पंचमहाव्रतों को साधु का कर्त्तव्य बताकर अपरिग्रह महाव्रतधारी के वस्त्र त्याग भी आवश्यक कहा है । सातवें अध्याय के क्षेत्र वास्तुहिरण्येत्यादि सूत्र में कुप्य शब्द से वस्त्र को भी क्षेत्रादि की भाँति परिग्रह बताया है । तत्त्वार्थाधिगम के कर्त्ता वाचक उमास्वामि श्री वीर निर्वाण ११९० में वीरप्रभसूरि और यशोविजय सूरि के अन्तराल में जिनभद्रगणि के उत्तर में हुए हैं, ऐसा श्वेताम्बरों की नन्दीसूत्र पट्टावली या पट्टावली सारोद्धार में बतलाया है । उन्होंने तत्त्वार्थसूत्र की छाया लेकर उससे मिलता हुआ पृथक सूत्रपाठ बनाया है और उसके ऊपर भाष्य लिखा है । कहीं पर तो सूत्र वाक्य के साथ कुछ भाष्य के अंश को भी सूत्र का अंश मानकर जोड़ा जा रहा है, कहीं सूत्र के अंश को भी भाष्य का अंश कहा जाता है । कहीं पर वस्तुत: दो सूत्रों को मिलाकर एक सूत्र कर लिया गया है तो कहीं एक

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

ही सूत्र को दो पृथक पृथक सूत्र कहे जा रहे हैं । तत्त्वार्थ सूत्र के विषय में ऐसा नहीं है वह उसके श्रद्धालु लोगों द्वारा प्राय: एक रुप में स्वीकृत है ।

'मोक्षमार्गस्य नेतांर' इत्यादि पद्य की व्याख्या में आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने ईश्वर द्वारा सृष्टि कर्तव्य का खण्डन किया है और वेदों के सूत्र तथा वेदानुयायी कुमारिल भट्ट की युक्तियों द्वारा यह खण्डन किया गया है । सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के विषय में आचार्य महाराज ने स्पष्टीकरण दिया है अनादि मिथ्या दृष्टि जीव के तो गुरुपदेश पूर्वक ही सम्यग्दर्शन होता है किन्तु सादि मिथ्यादृष्टि के गुरुपदेश के बिना भी हो जाता है। अत: 'तन्निसर्गादधिगमाद्वा' सूत्र में आये हुए वा शब्द का अर्थ अनादि मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा लेकर तो अवधारणात्मक अर्थ लेना और सादि मिथ्यार्हाष्ट की विवक्षा में विकल्प अर्थ ग्रहण करना ।

सात तत्त्वों का प्रतिपादक जीवा जीवा श्रव..आदि सूत्र श्वेताम्बर भी पढ़ते हैं, किन्तु उनके किसी आगम ग्रन्थ में सप्त प्रकार तत्त्व का वर्णन कहीं नहीं पाया जाता, अपितु उनके यहाँ पुण्य और पाप को मिलाकर नव पदार्थों का वर्णन ही सब जगह किया हुआ है । दिगम्बर परम्परा में सप्ततत्त्व और नव पदार्थ इस तरह पृथक् पृथक् उपदेश अवश्य पाया जाता है ।

सत्संख्यादि सूत्र के विषय में यह ज्ञात्व्य है कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय के आगम में ये ही सदादि अनुयोगद्वार हैं, परन्तु उनकी संख्या नौ अङ्क प्रमाण है; क्योंकि उनके यहाँ भाग नाम का अनुयोग एक और माना गया है, जैसा कि उनके अनुयोग द्वार नाम सूत्र ग्रन्थ में है-

से कित अणुगमे ? नवविहेपण्णत्ते तं जहा- सन्तपयरुपणया १ दव्वपमाणं च २ खित्तं ३ फुसणाय ४ कालोय ५ अन्तरं ६ भाग ७ भाव ८ अप्पावहं ९ चेव ॥ अनु. सू. ८०

किन्तु दिगम्बर सम्प्रदाय के षट्खण्डागम ग्रन्थ में यही अनुयोगद्वार लिखे हैं -

सन्तपुरुवणा १ दव्वमाणाणुगमो २ खेताणुगमो ३ फुसणाणुगमो ४ कालाणुगमो ५ अन्तराणुगमो ६ भावाणुगमो ७ अप्पबहुगाणुगमो ८ चेदि ।

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

किन्तु तत्त्वार्थसूत्र का सत्संख्यादि सूत्र श्वेताम्बरों के यहाँ भी ऐसा ही पढ़ा जाता है, जैसा कि ऊपर लिखा है।

भवप्रत्ययोऽवधिदेवनारकाणाम् की व्याख्या में आचार्य श्री ज्ञानसागर जी का कहना है कि ऐसा नियम नहीं करना कि देव नारकियों के ही भवप्रत्यय नामक अवधिज्ञान होता है; क्योंकि पंचकल्याण के धारक तीर्थकरों के भी जन्म से ही अवधिज्ञान होता है, अत: वह भी भवप्रत्यय है, ऐसा गोम्मट सार का कहना है। कुछ आचार्यों का कहना है कि देव और नारकियों के ही भव प्रत्यय अवधिज्ञान होता है । उनके हिसाब से पंच कल्याणधारी तीर्थंकरों को जो अवधिज्ञान हे, वह भवप्रत्यय न होकर भवान्तरायात अवधिज्ञान होता है। क्योंकि वे या तो स्वर्ग से आकर या नरक से आकर जन्म धारण करते हैं सो सम्यग्दर्शन और अवधिज्ञान युक्त हो अवतार लेते हैं, न कि यहाँ पर अवधिज्ञान प्राप्त करते हैं ।

'विशुद्धयप्रतिपाताभ्यांतद्विशेष:' सूत्र की व्याख्या में कहा गया है- ऋजुमति से विपुलमति अधिक विशुद्ध होता है एवं ऋजुमति होकर छूट भी जाता है, किन्तु विपुलमति नहीं छूटता, केवल ज्ञान प्राप्त करके ही रहता है । मतलब यह कि ऋजुमति उपशम श्रेणी वाले को होता है, किन्तु विपुलमति क्षपक श्रेणी वाले को ।

अवधि और मन: पर्यय के भेद के विषय में आचार्य श्री ज्ञानसागर जी ने विशेष बात यह कही है कि अवधिज्ञान सम्पूर्ण लोक की बात को जान सकता है, किन्तु मन: पर्यय ज्ञान ढाई द्वीप में ही होता है, अवधिज्ञान का स्वामी सामान्य तौर पर चारों गतियों में होने वाला संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव होता है, किन्तु जब इसमें भेद करें तो ऐसे जीवों के जघन्य देशावधि ज्ञान ही हो सकता है । उत्कृष्ट देशावधिज्ञान तो संयमधारी मुनिराज के ही होता है । परमावधि और सर्वावधि तो उसी भव मे मोक्ष जाने वाले मुनि के होते हैं । मन: पर्ययज्ञान ऋद्धिधारक मुनि के होता है ।

सम्यक्त्व चारित्रे सूत्र की व्याख्या में कहा गया है कि कर्मों के जघन्य स्थिति बन्ध में एवं उत्कृष्ट स्थिति बन्ध में भी प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं होता, किन्तु जब बँधने वाले कर्म तो अन्त: कोटा कोटी सागर की स्थिति

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆
मात्र में बंधने लगे और बँधे हुए कर्म अन्त: कोटा कोटी से भी संख्यात हजार सागर कर्मस्थिति वाले हो रहें, तभी जीव प्रथम सम्यक्त्व के योग्य होता है । तीसरी बात में इस जीव के जन्म का विचार है अर्थात् जो संज्ञी पञ्चेन्द्रिय एवं पर्याप्त दशा में हो, जिसके कि परिणाम पूरी तौर पर विशुद्ध हो ऐसा भव्य जीव ही सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है । इन उपर्युक्त अन्तरङ्ग कारणों के साथ साथ बाह्य में जाति स्मरण वगैरह का निमित्त मिलने पर सम्यक्त्व होता है । यदि कहा जाय कि अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ इनके उपशम की सम्यग्दर्शन के लिए क्या जरुरत है, ये तो चारित्र मोहनीय की प्रकृतियां है, तो इसका उत्तर यही है कि इनमें चारित्र और सम्यक्त्व दोनों को नष्ट करने की शक्ति मानी गयी है और जहाँ सम्पूर्ण चारित्रमोह का उपशम हो जाता है, वहाँ ग्यारहवें गुण स्थान में उपशम चारित्र होता है ।

'ज्ञान दर्शन दान लाभभोगोपभोगवीर्याणि च' की व्याख्या में कहा गया है कि अन्तराय के क्षय से अभयदानादि होते हैं तो फिर सिद्ध भगवान् के भी होने चाहिए तो इसका उत्तर यह है कि वहाँ उनके तीर्थंकर नामकर्म और शरीर नाम कर्म वगैरह का सद्भाव नहीं होता, जिसके कि सहयोग की इनमें जरुरत पड़ती है ।

'पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः' सूत्र का अर्थ है कि पृथ्वी कायिकादि पाँचों प्रकार के जीव स्थावर कहलाते हैं । तत्त्वार्थाधिगम भाष्यकार केवल पृथ्वी, जल और वनस्पतिकायिक जीवों को ही स्थावर मानते हैं, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों को एकेन्द्रिय मानते हुए भी त्रस बताते हैं, वे ही नहीं किन्तु श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचित पंचास्तिकाय में भी ऐसा ही लिखा है-

तित्थावरतणुजोगा अणिलाणलकायिया य तेसु तसा ।
मणपरिणामविरहिदा जीवा एइन्दिया णेया ॥

अर्थात् पाँच प्रकार के एकेन्द्रिय जीवों में से भी उनके शरीर की बनावट को देखने से तीन प्रकार के (पृथ्वीकायिक, जलकायिक और वनस्पतिकायिक) जीव ही स्थावर हैं, बाकी वायुकायिक और अग्निकायिक जीव त्रस ही है,

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★

ऐसा इस गाथा में बतलाया है। परन्तु प्रसिद्ध आम्नाय यही है कि पृथ्वी कायिकादि पाँचों प्रकार के जीव स्थावर हैं, इनके सिवा बाकी के जीव त्रस हैं ।

'निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रिय' की व्याख्या में कहा गया है कि उपकरण भी दिगम्बर सम्प्रदाय के ग्रन्थों में तो बाह्य और अभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार का माना जाता है किन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदाय के आगमों मे एक तत्त्वार्थाधिगम भाष्य को छोड़कर कहीं भी इस प्रकार का भेद किया हुआ देखने में नहीं आया, जैसा कि सिद्धसेन गणी भी लिख गए हैं- आगम में तु नास्तिकश्चिदन्तर्बहिर्भेद उपकरणस्येत्याचार्यस्यैदं कुतोऽपि सम्प्रदाय इति अर्थात् प्राचीन आगम में इस प्रकार की अन्तर बाहिर रुप उपकरण भेद की कल्पना नहीं है, भाष्यकार आचार्य की यह सिर्फ अपनी ही मान्यता कहीं से लाकर कही गई प्रतीत होती है ।

'विग्रहगतौ कर्मयोग:' सूत्र की व्याक्या में एक शङ्का उत्थापित है कि हमने तो कई जगह जैन शास्त्रों में पढ़ा है कि कर्म तो धर्मास्तिकाय की भाँति उदासीन कारण होता है । इसका उत्तर यह है कि जहाँ पर कर्म को उदासीन कारण लिखा है, वहाँ मोह को बावत समझना चाहिए । यानी किसी भी प्रकार के शुभा शुभ कर्म का उदय हो तो उसमें खुश या नाराज होकर राग द्वेष करे या न भी करे तथा कम वेसी करे यह जीव के हाथ की बात है, किन्तु सभी जगह कर्मों के बारे में ऐसा नहीं है, अन्यथा तो नरक योनि को प्राप्त हुआ जीव वहां के दु:खो से डरकर अपने उस शरीर को छोड़कर वहाँ से निकलना चाहता है सो निकल क्यों नहीं जाता है ? इसके उत्तर में यही कहना होगा कि वहां पर उसके नरकायु कर्म ने रोक रखा है ।

तत्त्वार्थाधिगमभाष्य में एकं द्वौ त्रीन्वाऽ नाहारक: के स्थान में एकं द्वौऽ नाहारक: पाठ है, जिसका तात्पर्य यह है कि जीव एक समय या दो समय तक ही अनाहारक रहता है, अधिक नहीं । इसके लिए उसके टीकाकारों ने एक युक्ति भी लिखी है कि तीन मोडे वाली गति में जो चार समय लगते हैं, उनमें से पहिला समय तो च्युत देश का और चौथा समय जन्म का हुआ शेष मध्य के दो समयों में ही अनाहारक रहता है, किन्तु यह समाधान ठीक नहीं बैठता, क्योंकि च्युतदेशता और जन्म ये दोनों तो एक

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆
समय वाली और दो समय वाली गति में भी तो होते हैं। अनाहारकता का सम्बन्ध तो मोड़ों के साथ में है । जिस गति में जितने मोड़े लेगा, उतने समय तक अनाहारक रहेगा । जैसा कि श्वेताम्बरों के ही आगम ग्रन्थ में लिखा हुआ है-

जीवेणं भन्ते ! कं समय अणाहारये भवई ! पढमे समये सिया आहारये सिया अणाहारये, बितये समये सिया आहारये सिया अणाहारये, ततिये समये सिया आहारये, सिया अणाहारये, चउत्थे समये णियमा आहारये एवं दण्डवो जीवा य एइन्दिया य चउत्थे समये ऐसा ततिये समय ।

व्याख्या प्रज्ञप्ति ७ उ. १ सू. २६०

'आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्या: सूत्र की व्याख्या के प्रसङ्ग में कहा गया है कि अपर्याप्त अवस्था में तो ये चारों ही लेश्यायें हो सकती है, किन्तु पर्याप्त दशा में अर्थात् देवपना पा लेने के बाद तो सिर्फ पीत नाम की लेश्या ही होती है, ऐसा दिगम्बर सम्प्रदाय के मान्य ग्रन्थ गोम्मट सार में कथन है । श्वेताम्बर ग्रन्थ उत्तराध्ययन में लिखा है कि देवगति में कृष्ण लेश्या की स्थिति जघन्यपने दश हजार वर्ष की और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यात वें भाग की है । कृष्ण लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति में एक समय और मिलाने पर नील लेश्या की जघन्य स्थिति होती है । उसी में पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग और मिलाने पर नील लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति होती है । एक समय अधिक नील लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति ही कापोत लेश्या की जघन्यस्थिति और उससे पल्पोपम का असंख्यातवाँ भाग अधिक उसकी उत्कृष्ट स्थिति होती है। भवनत्रिक और वैमानिक इन चारों तरह के देवों में तेजो लेश्या होती है, उसकी स्थिति जघन्य एक पल्योपम की एवं उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक दो सागर की है । तेजो लेश्या की स्थिति जघन्य से दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागर है । तेजो लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति में एक समय और मिलाने पर पद्मलेश्मा की जघन्य स्थिति होती है । इसकी उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त अधिक दश सागर की होती है । उसमे एक समय और मिलाने पर शुक्ललेश्या की जघन्य स्थिति, किन्तु उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त अधिक तेतीस सागर की होती है ।

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

तत्त्वार्थसूत्र के अन्तम सूत्र क्षेत्रकालगति........आदि की व्याख्या में कहा है कि कुछ लोग इस शब्द में आए हुए लिङ्ग शब्द से यह अभिप्राय लेते हैं कि जिस प्रकार निर्ग्रन्थ लिङ्ग से मुक्ति प्राप्त कर सकता है, वैसी ही बुद्धिपूर्वक धारण किए हुए अन्य लिङ्ग से भी साक्षात् मुक्ति पा सकता है, किन्तु ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि जिसके पास अणुमात्र भी परिग्रह वह वस्तुतः है, गृहस्थ ही है, इसलिए उसे मुक्ति नहीं मिल सकती है।

इस प्रकार तत्त्वार्थ सूत्र की इस टीका में आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने सर्वार्थसिद्धि समय सार तथा उसकी टीकाये पञ्चस्तिकाय, तत्त्वार्थवातिक, गोम्मटसार आदि आर्षग्रन्थों के आलोक में सूत्रों की विशद व्याटाख्या की है । 'सत संख्या' आदि सूत्र की व्याख्या में षटखण्डागम का भी सहारा लिया गया है । आचार्य श्री ने तत्त्वार्थधिगम भाष्य, भगवती सूत्र, आचाराङ्ग, उत्तराध्ययन सूत्र आदि श्वेताम्बर ग्रन्थों का भी तुलना के लिए उपयोग किया है तथा जहाँ श्वेताम्बर ग्रन्थों से मतभेद है, वहाँ उसकी भी चर्चा की है तथा जहाँ समीक्षा की आवश्यकता है, वहाँ समीक्षा भी करते चले हैं । प्रारम्भ में ईश्वर सृष्किर्तृत्व के मीमांसा प्रसङ्ग में ऋग्वेद, अर्थवेद, कठोपनिषद तथा महाभारत के उद्धरण दिए हैं । इस प्रकार अनेक ग्रन्थों का आलोचन विलोचन कर इस ग्रन्थ की टीका सरल हिन्दी में लिखी गई है। इससे अनेक सैद्धान्तिक विशेषताओं की जानकारी होने के साथ सूत्रार्थ को जानने में मदद मिलती है । प्रारम्भिक प्रस्तावना पाण्डित्यपूर्ण है । तत्त्वार्थाधिगम भाष्य के स्वोपज्ञ होने का वहाँ सप्रमाण खण्डन है । इस प्रकार यह टीका टीकाकार के वैदुष्य और गम्भीर अध्ययन को अभिव्यक्त करती है ।

मानवधर्म - मानव धर्म सुप्रसिद्ध जैनाचार्य समन्ततभद्र के रत्न करण्ड श्रावकाचार पर आचार्य ज्ञानसागर महाराज द्वारा लिखा गया सरल विवेचन है। इसमे पूर्व रत्न करण्ड श्रावकाचार पर कुछ अन्य टीकायें भी लिखी गयी, जो संस्कृत और हिन्दी में लिखी गई, किन्तु हिन्दी भाषा मे रत्नकरण्ड श्रावकाचार का इतना सरल और सुबोध विवेचन दूसरा नहीं मिलता । इसे आबालवृद्ध सभी समझ सकते हैं । उदाहरणार्थ एक प्रकरण लीजिए । आचार्य समन्तभद्र ने दोषरहित को आप्त कहा है, इस पर शङ्का समाधान द्वारा आचार्य ज्ञानसागर ने सुन्दर विवेचन किया है।

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

शङ्का - आप जो कहते हैं कि सच कहने वाले में क्षुधादि दोष बिल्कुल नहीं होने चाहिए तो समझ में नहीं आता । हम तो जितने आदमियों को देखते हैं तो किसी में कम और किसी में अधिक उपर्युक्त सभी बातें पायी जाती हैं । ऐसा कोई भी नहीं हो सकता जो इनसे सर्वथा दूर हो ।

उत्तर - भाई साहब जब आप यह कहते हो और देख रहे हो कि क्षुधादि किसी के ज्यादा है तो किसी के कम, ऐसी हालत में यह भी सम्भव है जी किसी के अन्दर बिल्कुल भी न हो । एक कपड़ें में बहुत मैल है, दूसरे में कम, तीसरे में उससे भी कम तो कोई कपड़ा ऐसा भी है, जिसमें जरा सा भी मैल नहीं है ।

शङ्का - कपड़े में तो मैल ऊपर से आता है, परन्तु मनुष्य में उपर्युक्त दोष सदा से है, इसलिए दोनों बात एक कैसे हो सकती है ।

उत्तर - कपड़े को रहने दो। सोना जो खान से निकलता है, उसमें किसी में ज्यादा मैल होता है, किसी में कम, किन्तु सुनार के द्वारा संशोधन किए गए सोने में बिल्कुल नहीं होता । हाँ उसके संशोधन करने में कुछ कसर कर दी जाती है जो जरा कुछ मैल फिर भी रह जाता है , अन्यथा वह एकदम शुद्ध होकर सौटंच का बन जाता है, उसी प्रकार कोशिश करने पर मनुष्य भी निर्दोष बन जाता है । तदेवं

नव सादर टङ्कागिन वशात् स्वर्ण विशुद्धयति .
तथा तत्सङ्ग सौहार्द तपोभिरयमात्मवान् ।।

अर्थात् जिस प्रकार नौसादर और सुहागा डालकर स्वर्ण को अग्नि में अच्छी तरह तपाने से वह बिल्कुल कीट रहित शुद्ध बन जाता है, उसी प्रकार सत्पुरुषों के सङ्ग को पाकर अपने मन को पुनीत बनाने और बाह्य आवश्यकता को मिटाने रुप तपस्या के द्वारा हम अपनी आत्मा को भी शुद्ध, निर्दोष बना सकते है, ऐसा करने मे हमारे साथ लगे रागादि दोष मिट सकते हैं ।

समयसार टीका - आचार्य कुन्द कुन्द कृत समयसार पर जयसेन आचार्य कृत टीका प्राप्त होती है । यह टीका सरल है और गाथाओं के पदों को खोलने वाली तथा गुणस्थान परिपाटी के अनुसार प्रसङ्गों का विवेचन करने

★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★★
वाली है, अन्य भी अनेक गुण इसमें समाहित हैं, इसकी हिन्दी टीका आचार्य ज्ञानसागर ने की है, जो दिगम्बर जैन समाज अजमेर से वर्ष १९६९ ई. में प्रकाशित हो चुकी है । जयसेन कृत टीका के साथ आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने इसमें विशेषार्थ भी दिया है । कहीं कहीं अपना विशेषार्थ न देकर पं. जयचन्द्र जी कृत भावार्थ नामोल्लिेख पूर्वक दिया है। अपने विशेषार्थ की पुष्टि में उदाहरण भी दिए हैं, कहीं कहीं ग्रन्थों के उद्रण भी दिए है, जैसे - ७६ वीं गाथा के विशेषार्थ में परमात्मप्रकाश और गोम्मटसार के उद्धरण दिए हैं। आचार्य श्री ने विशेषार्थ द्वारा विषय को और अधिक खोलने की चेष्टा की है। उदाहरणत: समयसार की तेरहवीं गाथा ववहारोऽभूयत्थो........पर लोग विवाद करते हुए देखे जाते हैं । आचार्य ज्ञानासागर जी ने इसके विशेषार्थ में लिखा है -

यहाँ तात्पर्यवृत्तिकार ने इस गाथा का अर्थ दो प्रकार से किया है । एक तो यह कि व्यवहारनय तो अभूतार्थ है और निश्चयनय भूतार्थ है जो कि अमृतचन्द्र आचार्य द्वारा भी सम्मत है, किन्तु इन्हीं आचार्य ने गाथा के 'दु' शब्द को लेकर दूसरे प्रकार से भी अर्थ किया है कि व्यवहारनय भूतार्थ व अभूतार्थ के भेद से दो प्रकार है, उसी प्रकार निश्चय नय भी शुद्ध निश्चयनय व अशुद्धनिश्चयनय के भेद से दो प्रकार है, उसमें भूतार्थ को आश्रय करने वाला सम्यग्दृष्टि होता है।

यहाँ भूतार्थ शब्दका अर्थ सत्यार्थ व अभूतार्थ का अर्थ असत्यार्थ किया है, किन्तु यहाँ पर असत्यार्थ का अर्थ सर्वथा निस्सार नहीं लेना चाहिए, किन्तु 'अ' का अर्थ ईषत लेकर व्यवहारनय अभूतार्थ अर्थात् तात्कालिक प्रयोजनवान् है, ऐसा लेना चाहिए, जैसा कि स्वयं जयसेनाचार्य ने भी अपने तात्पर्यार्थ में बतलाया है ।

किं च भूत शब्द का अर्थ संस्कृत भाषा के विश्वलोचन कोश में जिस प्रकार सत्य बतलाया है, उसी प्रकार उसका अर्थ सम भी बतलाया है । अत: भूतार्थ का अर्थ जबकि सम होता है अर्थात् सामान्य धर्म को स्वीकार करने वाला है तो अभूतार्थ का अर्थ विषम अर्थात् विशेषता को कहने वाला अपने आप हो जाता है । इस प्रकार व्यवहारनय अर्थात् पर्यायार्थिकनय और निश्चयनय

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

अर्थात् द्रव्यार्थिकनय इस प्रकार का अर्थ अन्नयास ही निकल जाता है, जो कि इतर आचार्यों के द्वारा सर्व सम्मत है और फिर निश्चयनय को स्वीकार कर लेने पर ही सम्यग्दृष्टि होता है, यह बात भी कुन्दकुन्दाचार्य की सर्वथा ठीक बैठती है। क्योंकि जब तक जीव जिस पर्याय में जाता है, उस पर्याय रुप ही अपने आपको मानता रहता है, पशु होने पर पशु, मनुष्य होने पर मनुष्य इत्यादि। किन्तु जब अपने आपको पशु या मनुष्य इत्यादि रुप ही न मानकर सदा शाश्वत रहने वाला, ज्ञान का धारक आत्मा मानने लगता है, तब ही सम्यग्दृष्टि होता है[१]।

समयसार टीका के विषय में सेठ भागचन्द जी सोनी, (अजमेर) ने लिखा था-

'इस ग्रन्थराज की भाषा टीका श्री १०८ आचार्य पूज्य ज्ञानसागर जी महाराज द्वारा हुई है। उनकी ज्ञान गरिमा को विद्वत् समाज भली भाँति जानता है। प्रस्तुत टीका उनके गहन अध्ययन, विशिष्ट विद्वत्ता एवं अगाध अनुभव का सार है। ग्रन्थराज की विषय वस्तु विद्वानों एवं स्वाध्यायप्रेमियों के लिए मनन करने योग्य है। जिस सरल भाषा में ऐसे कठिन विषय पर इस ग्रंथ में विवेचन हुआ है, उसमें अनेकों समाधान सहज ही हो जाते हैं। टीका के निर्माण में आचार्य श्री ने कई वर्षों तक अथक परिश्रम किया है। उनकी इस ज्ञानाराधना के प्रति विनयपूर्वक शत शत वन्दन। वे एक महान् योगी, साधु एवं विद्वान है।

ऋषभावतार - यह आचार्य श्री ज्ञानसागर प्रणीत हिन्दी का एक प्रबन्ध काव्य है जिसके 17 अध्यायों में आदितीर्थंकर ऋषभदेव का जीवन चरित्र निबद्ध है। इसमें आठ सौ ग्यारह पद हैं। यह एक महाकाव्य है[२]।

ऋषि कैसा होता है- ऋषि के स्वरुप का वर्णन करने वाली यह ४० पद्यों की सुन्दर कृति हैं।

भाग्यदोय - आठ सौ अट्ठावन पद्यों में लिखा गया धन्यकुमार के जीवन चरित्र का प्रतिपादक हिन्दी का यह श्रेष्ठ काव्य है।

---

१. समयासर-गाथा १३ (विशेषार्थ) पृ. १३

२. प्रकाशन- श्री दिगम्बर जैन समाज, मदनगंज (१९६७ ई.)

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

इसमें भाग्य के आरोह, अवरोह और व्यक्ति के पुरुषार्थ का सुन्दर निदर्शन है[१]।

गुणसुन्दरवृत्तान्त- इसमेंराजा श्रेणिक के समय तरुणावय में दीक्षित श्रेष्ठिपुत्र गुणसुन्दर का मार्मिक वर्णन है ।

सचित्त विवेचन - जो चित्त अर्थात् जीव सहित हो ऐसी वनस्पति आदि को सचित्त कहते हैं । इसके खाने में महादोष है, इसका इसमें अच्छा निरुपण है[२]।

स्वामी कुन्दकुन्द और सनातन जैन धर्म - इसमें आचार्य कुन्द कुन्द के जीवन वृत्त के साथ सनातन जैन धर्म के स्वरुप का विवेचन है[३]।

पवित्र मानव जीवन - १९३ पदों में कवि ने मानव जीवन के पवित्र आयामों- समाज सुधार, कृषि, पशुपालन, भोजन के नियम, स्त्री कर्त्तव्य, बालकों के प्रति बड़ों का दायित्व आदि विषयों पर प्रकाश डाला है[४]।

सरल जैन विवाह विधि - इसमें जैन विवाह पद्धति का उत्तम निरुपण है । इसका प्रकाशन दिगम्बर जैन समाज, हिसार ने १९४७ में कराया था।

विवेकादोय - मनुष्य के जीवन में जब भेद विज्ञान का उदय होता है तब वह जिनत्व के मार्ग पर बढ़ता है, इसकी प्रक्रिया का समय सार में उत्तम चित्रण है। ममयसार की प्राकृत गाथाओं का गीतिका छन्द में हिन्दी रुपान्तर आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने किया है। इसके अतिरिक्त आचार्य कुन्द कुन्द के अष्टपाहुड और नियमसार का हिन्दु पद्यानुवाद भी महाराज श्री ने किया था ।

उनके द्वारा आचार्य समन्तभद्रकृत देवागम का भी हिन्दी पद्यानुवाद प्रकाशित है ।

---

१. जैन समाज, हांसी द्वरा १९५७ई. में प्रकाशित

२. जैन समाज, हांसी से १९७६ ई. में प्रकाशित ।

३. खजानसिंह, विमल प्रसाद जैन, मुजफ्फरनगर द्वार .१९४२ ई. में प्रकाशित।

४. दिगम्बर जैन महिला समाज पंजाब द्वारा १९६५ ई. में प्रकाशित